उच्च शिक्षा की नई नीतिः

समस्याएँ व समाधान

NIEPA DC
D03340

अर्थशास्त्र विभाग
गढ़वाल विश्वविद्यालय
श्रीनगर (गढ़वाल)—246174
उत्तर प्रदेश

विषय - सूची

खण्ड - 1

विवरण		पृष्ठ संख्या
संगोष्ठी : प्रस्तावना	- डॉ० नारायण सिंह विष्ट संयोजक	1 - 2
संगोष्ठी : उद्घाटन	- प्रो० हरिहर आनन्द बौड़ाई कुलपति	- 3
संगोष्ठी कार्य विवरण	- संयोजक	4 - 29
संगोष्ठी में पारित सुधार के सुझाव	- संयोजक	20 - 29
संगोष्ठी : समापन भाषण	- प्रो० हरि हर आनन्द बौड़ाई कुलपति	30 - 31

खण्ड - 2

उच्च शिक्षा का उद्देश्य तथा सुधार के सुझाव	- डॉ० आर० एस० गैरोला प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र) श्रीनगर	32 - 41
उच्च शिक्षा की नई नीति से अपेक्षायें : व्यावहारिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य ।	- डॉ० नारायण सिंह विष्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (अर्थशास्त्र) श्रीनगर	42 - 65
उच्च शिक्षा नीति और हिन्दी का अध्ययन ।	- डॉ० हरिमोहन, प्राध्यापक (हिन्दी) श्रीनगर	66 - 74
विश्वविद्यालय शिक्षा में गुणात्मक ह्रास, समस्या एवं समाधान हेतु सुझाव ।	- डॉ० जे०पी० पंचौरी प्राध्यापक (समाजशास्त्र) श्रीनगर	75 - 81
उच्च शिक्षा में वर्तमान मूल्यांकन की कमियाँ तथा उसे दूर करने के सुझाव ।	- डॉ० एम०सी० जोशी एवं डॉ० जे०पी० पंचौरी (समाजशास्त्र) श्रीनगर	83 - 88
वर्तमान मूल्यांकन पद्धति की कमियाँ तथा उसे दूर करने के सुझाव ।	- डॉ० जी०डी० मैठाणी विभागाध्यक्ष (भूगोल) टिहरी	89 - 94

- भारतीय उच्च शिक्षा तथा विकसित राष्ट्रों की उच्च-शिक्षा में अन्तर तथा सुझाव ।	- डॉ० के०बी० बुधोड़ी प्राध्यापक (शिक्षा) श्रीनगर	95 - 100
- उच्च शिक्षा नीति : एक दृष्टिकोण ।	--श्री के०एन० जोशी प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) श्रीनगर ।	101 - 105
- विश्वविद्यालय और प्रसार कार्य	- डॉ० अरुण मिश्र सहायक निदेशक प्रौढ़ शिक्षा, श्रीनगर	106 - 108

खण्ड - 3

. Recommondations for Improvement is Solection, Training & Advancement of Teachers of Higher Educational Institutions.	- Dr. Beena Shah Lecturer (Education) Srinagar.	1 - 5
. New Education Policy : some suggcstions.	- Dr. R.S. Yadav Lecturer (Education) Srinagar.	6 - 10
- संगोष्ठी में भाग लेने वाले व्यक्तियों की सूची -		109 - 110

गुरुतर विषय पर गहन चर्चा करें और एक निश्चित नीति पत्र बनाकर राष्ट्र के लिये मॉडल तैयार करें और उसे मानवीय संसाधान विकास मंत्रालय को केन्द्रीय शिक्षा परिषद् की बैठक होने से पूर्व प्रेषित करें ।

विषय वस्तु को विभिन्न खण्डों में बांटा गया है, जैसे-उच्च शिक्षा का उद्देश्य, उच्च शिक्षा का व्यवहारिक जीवन से तालमेल, उच्च शिक्षा में व्यवसाय परक आयाम, विकसित राष्ट्रों तथा भारतीय उच्च शिक्षा में अन्तर, विभिन्न विश्वविद्यालयों में शिक्षा तथा पाठ्यक्रम की समानता, विश्वविद्यालयों में छात्रों की बढ़ती हुई भीड़ तथा शिक्षा की गुणवता, उपाधि की विश्वसनीयता में कमी, विश्वविद्यालय उपाधि को रोजगार निपेक्ष बनाने, गुणवत्ता में सुधार, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये संसाधानों में समन्वय स्थापित करने, विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में प्रशासनिक सुधार, विश्वविद्यालयों में सामान्य प्रशासनिक सुधार, शिक्षकों के स्तर में गुणवता, लाने के लिये शिक्षकों के लिए चयन प्रक्रिया तथा सुविधायें, शिक्षकों तथा छात्रों को राजनीति से तटस्था रखने के उपाय, छात्रसंघ व शिक्षक संघों की भूमिका, छात्रों तथा शिक्षकों में अनुशासन हीनता, मूल्यांकन प्रणाली में सुधार, आन्तरिक तथा वाह्य मूल्यांकन में तालमेल, पत्राचार पाठ्यक्रम, विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम(भाषा), आदि । इनमें से कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर, जैसे- उच्च शिक्षा का उद्देश्य, उच्च शिक्षा का व्यावहारिक तथा सामयिक परिप्रेक्ष, विश्वविद्यालयों में शिक्षा का गुणात्मक ह्रास, मूल्यांकन पद्धति में कमियां, शिक्षकों के चयन, प्रशिक्षण तथा गुणवता का उच्चीकरण, उच्च शिक्षा नीति तथा हिन्दी का अध्ययन विकसित राष्ट्रों तथा भारतीय उच्च शिक्षा में अन्तर, आदि, शीर्षकों पर, शोध-पत्र प्राप्त हुये हैं । मुझे आशा है कि आप सहयोगी बन्धु व छात्र वर्ग सामुहिक रूप से सभी आवश्यक तथा महत्वपूर्ण समस्याओं पर अपने विचार प्रस्तुत करके उनका मंथन करेंगे तथा सुझाव प्रस्तुत करेंगे ।

उच्च शिक्षा की नई नीति संगोष्ठी: उद्घाटन

माननीय कुलपति द्वारा दिये गये उद्घाटन भाषण का सारांश

प्रो० एच०एच०ए० बौड़ाई, कुलपति, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर ने "उच्च शिक्षा की नई नीति" विषयक संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कहा कि वर्तमान समय में चल रही शिक्षा प्रणाली मैकोले शिक्षा प्रणाली भी कही जाती है। उनका कथन है कि जहाँ एक ओर मैकोले शिक्षा प्रणाली से राष्ट्र को हानियाँ हुई हैं, वहीं दूसरी ओर लाभ भी प्राप्त हुये हैं। उदाहरणार्थ, हमारे देश में जागरूकता तथा राष्ट्रीयता की भावना को जगाने का कार्य इसी शिक्षा पद्धति की देन हैं।

प्रो० बौड़ाई ने आगे कहा कि उच्च शिक्षा में सुधार व गुणवता तभी आयेगी, जब प्राथमिक शिक्षा(प्राइमरी शिक्षा) को समस्त सुविधाएं देकर सुधारा जाय। उनका कहना था कि प्राइमरी विद्यालयों में सभी आधारभूत सुविधाएं, जैसे- पढ़ाने के लिये योग्य शिक्षक, बिछाने के लिये टाट-पट्टी, लिखाने के लिये श्यामपट्ट, बैठने के लिये भवन, आदि, तुरन्त उपलब्ध कराई जानी चाहिये। क्योंकि प्राइमरी शिक्षा ही उच्च शिक्षा की आधारशिला है। उच्च शिक्षा में परिमाण की अपेक्षा गुण को प्राथमिकता दी जाय। विश्वविद्यालयों में शिक्षकों को अपने छात्रों के लिए आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये। छात्रों को अध्ययनरत रह कर उच्च विचार तथा उच्च स्थान प्राप्त करने चाहिये। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि इस प्रकार की संगोष्ठी प्रत्येक विभागीय स्तर पर की जायेगी।

अन्त में उन्होंने संगोष्ठी की सफलता की कामना करते हुए संगोष्ठी में भाग लेने वाले शिक्षकों तथा छात्रवर्ग का आह्वान करते हुए कहा कि वे संगोष्ठी में दिये गये सुझाव व प्रस्ताव भारत सरकार तक पहुँचाने व प्रकाशन करने की व्यवस्था करेंगे।

संगोष्ठी कार्य-विवरण

प्रथम-सत्र

प्रो० हरिराज सिंह, जन्तु विज्ञान विभाग, ने नई उच्च शिक्षा नीति के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गुण व दोष दोनों मौजूद हैं । इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है, किन्तु इसे पूर्ण रूप से नहीं बदला जा सकता है । उन्होंने आगे कहा कि शिक्षा के तीन प्रमुख अंग हैं- शिक्षक, छात्र तथा कर्मचारी वर्ग, । इनमें सामंजस्य बनाना जरूरी है । शिक्षक कार्य अन्य सेवाओं की अपेक्षा अधिक सम्मानीय सेवा है । उन्होंने प्रोफेसर गिलबर्ट की पुस्तक-"आर्ट आफ टीचिंग" का उल्लेख किया और कहा कि यह उनके लिए उपयोगी है । हर छात्र को विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए । इसके लिए भारत में भी शिक्षा को मंहगा किया जाना चाहिए । उन्होंने आगे कहा कि शिक्षकों को छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए । शिक्षकों को स्वाध्याय बनाये रखना चाहिए । गिलबर्ट का उद्धारण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि छात्रों को ज्ञान न देना एक अपराध है । शिक्षकों को स्थायी रूप से नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि तीन वर्ष अथवा अवधि नियुक्ति की जानी चाहिये । स्नातक उपाधि रोजगार के लिये आवश्यक नहीं माना जाय, किन्तु समस्त सेवाओं में सम्भव नहीं है । शिक्षा में मौलिक परिवर्तन नीचे से ऊपर की ओर किया जाना चाहिये । शिक्षण में पर्यावरणीय शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिये । प्राइमरी शिक्षक को भी विश्वविद्यालय के समकक्ष वेतन दिया जाना चाहिये ।

इस सत्र में डॉ० आर०एम० गैरोला द्वारा अपना पत्र शीर्षक-"उच्च शिक्षा का उद्देश्य तथा व्यावहारिकता हेतु सुझाव" प्रस्तुत किया गया, जिसमें कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया । उनके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य मनुष्य में उत्कृष्ट बौद्धिक क्षमता का विकास करना, जागरूकता उत्पन्न करना, चरित्र निर्माण करना, राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना, आत्म निर्भर बनाना, व्यक्तित्व का

विकास करना, राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना, राष्ट्रीय सर्वांगीण विकास की भावना को प्रोत्साहित करना, आदि होने चाहिये ।

उच्च शिक्षा में सुधार लाने हेतु उन्होंने अपने सुझाव प्रस्तुत किये हैं । जिन पर सदन में विचार-विमर्श किया गया । अन्त में कुछ सुझाव उभर कर आये हैं । जिनमें कहा गया कि गुणवत्ता तथा समानता में संतुलन करना चाहिये । इसके लिए उन्होंने आवश्यकता के अनुरूप वित्तीय व्यवस्था, विभिन्न वर्गों में असंतुलन दूर करने के अन्य उपाय, वर्तमान व्यवस्थाओं में लचीलापन लाना तथा नई वैकल्पिक प्रणाली की व्यवस्था करना आवश्यक माना है । डॉ० गैरोला का विचार है कि मात्र प्रतिभाशाली छात्रों को उच्च शिक्षा के लिये प्रोत्साहित किया जाय । शिक्षकों को योग्यता के आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिये । शिक्षकों को सुविधाएं-आवास, निशुल्क चिकित्सा तथा पर्याप्त वेतन दिया जाना चाहिये ।

डॉ० एन०एस० विष्ट ने "उच्च शिक्षा नीति से अपेक्षाएं: व्यावहारिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य" नामक लेख सदन में प्रस्तुत किया । जिसमें उन्होंने भारतीय वर्तमान उच्च शिक्षा के दो दुष्परिणामों की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट किया । प्रथम, दुर्लभ साधनों द्वारा पोषित उच्च शिक्षा संस्थानों (आई०आई०टी०) में प्रशिक्षित विशिष्टीकृत इंजीनियरों तथा टेक्नीशियनों को विकसित राष्ट्रों के औद्योगिक विकास को और अधिक विकसित करने के लिये भारत मानव संसाधन तैयार कर रहा है और अपने आप उन्हीं विकसित राष्ट्रों से नई टेक्नोलोजी तथा तकनीक खरीद रहा है । इस प्रतिभा पलायन को राष्ट्रीय औद्योगिक विकास में अधिक अवशोषण शक्ति उत्पन्न करके राष्ट्रीय हित में रोकना अत्यन्त आवश्यक है । दूसरी ओर, सम्पूर्ण राष्ट्र में विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों द्वारा मूल्यहीन उपाधिधारी, विशेषत: तृतीय श्रेणी के बेरोजगारों की सेना में वृद्धि की जा रही है । देश में उपाधिधारी बेरोजगार विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो रही है । इस प्रकार दोनों ओर हमारे दुर्लभ साधनों का दुरूपयोग हो रहा है । इस स्थिति में परिवर्तन के लिये सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्तर पर जनता, जन-प्रतिनिधियों, नीति नियोजकों तथा सरकार में दृढ़ संकल्प तथा सहमति अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा गुणवता, समानता तथा प्रासंगिकता की बात करना कोरी कल्पना होगी ।

डा० विष्ट ने मुख्य रूप से उच्च शिक्षा के नीति नियोजकों का ध्यान उन समस्याओं की ओर आकृष्ट किया, जो विश्वविद्यालयों में बढ़ती हुई भीड़ को कम करने, उच्च शिक्षा में गुणवता बनाए रखाने, उच्च शिक्षा के लिए समुचित संसाधनों की व्यवस्था करने, स्नातक उपाधि को रोजगार निरपेक्ष करने तथा राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक मूल्यों को बनाये रखाने में बाधक हैं। डॉ० विष्ट ने इन बाधक तत्वों पर विजय पाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण, प्रभावकारी तथा सामयिक सुझाव प्रस्तुत किये हैं, जिनके सदन में चर्चा करने के पश्चात् स्वीकृत किया गया। ये सुझाव हैं- विश्वविद्यालयों में भीड़ को कम करने के लिये चयन शिक्षा प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिये। राष्ट्र के समस्त विश्वविद्यालयों में एक समान पाठ्यक्रम होना चाहिये। प्रविष्ट छात्रों को अपनी अभिरूचि तथा प्रवृत्ति के अनुसार विषाय समूह लेने की छूट होनी चाहिये। तृतीय श्रेणी समाप्त की जाय। आई०आई०टी० संस्थानों की भांति विश्वविद्यालयों में आन्तरिक मूल्यांकन प्रारम्भ किया जाना चाहिये। छात्रों को अनुशासन तथा उपस्थिति पर विशेष अंक दिये जाने चाहिये। एक सप्ताह से लगातार अकारण अनुपस्थित रहने पर ऋणात्मक अंक व्यवस्था होनी चाहिये। स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षण शोध कार्य पद्धति से सम्बद्ध किया जाना तथा पुस्तकालयों में शोध पुस्तकों व शोध पत्रिकाओं, प्रयोगशालाओं आदि की व्यवस्था समय तथा आधुनिकीकरण की दृष्टि से समुचित मात्रा में किया जाना अपरिहार्य है। सम्पूर्ण देश में विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की भावी आवश्यकताओं तथा जीवन मूल्यों की मांग को ध्यान में रखाते हुए पुनः संगठित किया जाना चाहिये। देश के उच्च स्तरीय शोध संस्थानों को विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिये। शोध व्यवहारिक जीवन तथा क्षेत्रीय समस्याओं का हल निकालने सम्बन्धी होने चाहिये। प्रतिभा पलायन को रोकने के लिये मानव संसाधन नियोजन किया जाना चाहिये। राष्ट्रीय स्तर पर संस्थाओं, सरकारी विभागों तथा उद्योगों के मध्य समन्वय स्थापित होना चाहिये। रोजगार के अवसरों (मांग) के अनुरूप उच्च शिक्षा दी जानी चाहिये।

डा० विष्ट का सुझाव है कि उच्च शिक्षा में गुणवता बनाये रखाने के लिये कुलपतियों तथा शिक्षकों की नियुक्तियां अखिल भारतीय स्तर पर

ज्ञान, शिक्षण, सम्प्रेषण तथा अनुसंधान प्रवृत्ति व अभिरुचि के आधार पर किया जाना चाहिये । सेवाकाल के दौरान प्रोन्नति शिक्षकों की गुणशीलता तथा ज्ञानकोष के सतत वृद्धि के आधार पर की जानी चाहिये । गुणवता बढ़ाने के लिये सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिये ।

वित्तीय संसाधनों की समुचित व्यवस्था के विषय में डॉ0 विष्ट का सुझाव है कि राष्ट्रीय स्तर पर दुलभ संसाधनों का दुरुपयोग तथा अपव्यय पर सब प्रकार से रोक लगाकर उच्च शिक्षा के लिये धन की व्यवस्था शिक्षा का राष्ट्रीकरण करके किया जाना चाहिये । उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिये चयन पद्धति तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सीमित साधनों के दुरुपयोग को समाप्त करने के प्रयत्न किये जाने चाहिये । व्यक्तिगत स्रोतों का अधिकतम विदोहन, अनावश्यक विभागों तथा संस्थाओं को बन्द करके संसाधनों की बचत, अनुसंधान के नाम पर दुलभ साधनों को बन्द करके संसाधनों की बचत, अनुसंधान के नाम पर दुलभसाधनों की अपव्यय पर रोक लगाकर शिक्षा के लिए अतिरिक्त साधन व्यवस्था की जानी चाहिये । विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों से उनकी मांग के अनुसार वित्तीय साधन शिक्षा संस्थाओं को दिये जाने चाहिये । सरकार द्वारा उच्च शिक्षा में गुणवत्ता तथा प्रासंगिकता लाने के लिये दृढ़संकल्प लेकर कठोर कदम उठाने चाहिये ताकि पूँजी विनियोग का सही उपयोग हो सके । उच्च शिक्षा के साथ मानव संसाधन विकास की मांग करने वाले क्षेत्रों ।विभागों। से समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये ।

डॉ0 विष्ट ने रोजगार स्नातक उपाधि निरपेक्षता के संदर्भ में एक मॉडल की अवधारणा प्रतिपादित की है, जो उच्च शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर रोजगार के लिये विभिन्न राष्ट्र स्तरीय सेवाओं तथा राष्ट्र स्तरीय रोजगार के अवसरों पर लागू किया गया है । इस मॉडल में समस्त उच्च शिक्षा को नौ वर्गों में विभाजित किया गया है । जिनके लिये 10+2 स्तरीय शिक्षा आधार सीमा मानी गई है । उनकी राय में राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय तकनीकी परिषद् मैडिकल परिषद्, प्रशासनिक सेवा परिषद्, वित्त एवं बैंक सेवा परिषद्, अर्थ, सांख्यिकी एवं औद्योगिक प्रबन्ध सेवा परिषद्, आदि की स्थापित की जानी चाहिए । चयन किये गये युवकों को आवश्यकतानुसार

विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जा सकता है, जैसा कि सैनिक सेवाओं में किया जा रहा है । विभिन्न प्रशिक्षण केन्द्रों में शिक्षा के विभिन्न स्तरों को समायानुसार व योग्यता की दृष्टि से शिक्षण दिया जा सकता है । परन्तु इस प्रकार की व्यवस्था समस्त सेवाओं अथवा रोजगार के अवसरों पर लागू नहीं हो सकता । अत: योग्य तथा उच्च स्तरीय ज्ञान पिपासु व्यक्तियों के लिए विश्वविद्यालयी शिक्षा अखिल भारतीय विश्वविद्यालय परिषद् द्वारा संचालित प्रवेश चयन पद्धति के आधार पर उच्च शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिये । अन्य लोगों के लिये खुले विश्वविद्यालय व पत्राचार सेवा उपलब्ध रहनी चाहिये । शोध कार्य तथा शिक्षकों का प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों की मांग के अनुसार पाठ्यक्रम समयबद्ध किया जाना चाहिये । भिन्न-भिन्न स्तर के शिक्षकों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम व समय निर्धारित किया जा सकता है । विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा परिषद् द्वारा की जानी चाहिये । चयनित शिक्षकों को शोध विधि तथा शिक्षण विधि में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये । मुख्य रूप से गुणवत्ता, ज्ञानवर्धन तथा सम्प्रेषण क्षमता बढ़ाने पर विशेष जोर दिया जाना चाहिये ।

उच्च शिक्षा के भाषा माध्यम के सम्बन्ध में डॉ० विष्ट का विचार है कि स्वतंत्रता के अठतीस वर्षों के बाद भी हिन्दी राष्ट्र भाषा तथा शिक्षा के माध्यम का रूप नहीं ले सकी है । राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक समग्रता बनाये रखो रहने के लिये हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम तथा सम्पर्क की भाषा तुरन्त घोषित किया जाना चाहिये तथा विभिन्न राज्यों में त्रिभाषा फार्मूला लागू किया जाना चाहिये जो समय की मांग के अनुकूल होगा ।

द्वितीय सत्र

द्वितीय सत्र में सर्वप्रथम डॉ० जे०पी० पचौरी, प्रवक्ता, समाजशास्त्र ने "विश्वविद्यालय शिक्षा में गुणात्मक ह्रास, समस्या एवं समाधान हेतु सुझाव" विषयक पत्र प्रस्तुत किया । डॉ० पचौरी ने अपने पत्र में भारतीय विश्वविद्यालयों में बढ़ते हुए राजनैतिक प्रभावों का वर्णन किया । उन्होंने कहा कि आज भारत

में उच्च शिक्षा पर राजनीतिक दवाब एवं प्रभाव इतना अधिक हो चुका है कि इसके फलस्वरूप योग्य व्यक्तियों के स्थान पर ऐसे व्यक्ति शिक्षा के नेता तथा नियति बन गये हैं, जिन्होंने कभी शिक्षा का अर्थ समझने का कष्ट नहीं किया है ।

विश्वविद्यालयों के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, सम्प्रदायवाद, भाई-भतीजावाद, स्वार्थपरता तथा व्यक्तिवादिता की भावना से आज सभी उद्देश्य धूमिल होते जा रहे हैं तथा विश्वविद्यालय शिक्षा का गुणात्मक ह्रास होता जा रहा है । आज विश्वविद्यालयों की उपलब्धियों का मूल्यांकन अनुसंधान की गुणशीलता तथा छात्रों की योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि इस आधार पर किया जाता है कि समय पर विश्वविद्यालय परीक्षायें सम्पन्न करा लेता है या नहीं ।

डॉ0 पचौरी ने अपने पत्र में बताया कि उच्च शिक्षा में गुणात्मक ह्रास की प्रक्रिया का प्रारम्भ विश्वविद्यालयों की स्थापना के साथ ही शुरू हो जाती है, क्योंकि अधिकतर विश्वविद्यालयों की स्थापना शैक्षिक जरूरत पर ठीक तरह से विचार करने के पश्चात् नहीं की जाती है । परिणाम यह होता है कि ये विश्वविद्यालय लम्बे समय तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते हैं । फलस्वरूप ये विश्वविद्यालय वित्त, अध्यापक व अन्य संसाधनों की कमी में चलते रहते हैं । इससे लम्बे समय तक विश्वविद्यालयों का स्तर गिर जाता है ,तथा यह प्रक्रिया आगे भी जारी रहती है । इसलिए विश्वविद्यालयों की स्थापना शैक्षिक जरूरत को ध्यान में रख कर की जानी चाहिये । डॉ0 पचौरी ने अपने पत्र में इस बात पर बल दिया कि आज विश्वविद्यालय प्रशासन पर राजनैतिक हस्तक्षेप इतना बढ़ गया है कि कुलपतियों की नियुक्ति से लेकर विश्वविद्यालयों में छोटे से छोटे कर्मचारी की नियुक्ति राजनैतिक नेताओं की कृपा से होती है । परिणाम स्वरूप योग्य व्यक्ति पीछे रह जाते हैं तथा कृपापात्र शिक्षक उच्च पदों पर नियुक्त हो जाते हैं । फलस्वरूप कृपापात्र शिक्षक तो वांछित शिक्षा प्रदान कर ही नहीं पाते हैं । साथ ही अवहेलित, उत्तम तथा योग्य तथा अनुभवी शिक्षक कुण्ठाग्रस्त होने के कारण चाहते हुए भी अपनी पूर्ण शक्ति और प्रतिभा का उपयोग

नहीं कर पाते हैं, और शिक्षा का स्तर गिरता चला जाता है ।

डॉ0 पचौरी ने उच्च शिक्षा में गुणावत्ता बनाये रखने के लिये इस बात पर बल दिया कि इस राजनैतिक भ्रष्टाचार को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि कुलपतियों की नियुक्ति सरकार द्वारा नहीं की जानी चाहिए । राष्ट्रीय स्तर पर पैनल बनाया जाय तथा उनको अपने राज्य से बाहर नियुक्त किया जाय । उस क्षेत्र के व्यक्ति को कुलपति के पद पर नियुक्त न किया जाय, जहां विश्वविद्यालय स्थित हो ।

डॉ0 पचौरी ने कहा कि आज हमारा इतना नैतिक पतन हो चुका है कि हम छोटे अवसर का लाभ उठाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति कर लेना चाहते हैं । भले ही हमारे स्वार्थों से जाति का, क्षेत्र का, सम्प्रदाय का व देश का कितना ही अहित क्यों न होता हो । आज हम जातिवाद, क्षेत्रीयवाद व सम्प्रदायवाद को अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिये प्रयोग करते हैं । इसलिए आज सबसे भयंकर बाद अगर कोई है तो वह है व्यक्तिवाद व स्वार्थवाद । साथ ही डॉ0 पचौरी ने कहा कि शिक्षकों की चयन प्रक्रिया को बदला जाय तथा चुनाव राष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक सेवा की तरह प्रतियोगिता परीक्षा लेकर किया जाय । इससे शिक्षा के क्षेत्र में वही लोग आ सकते हैं, जिन्हें आना चाहिए । डॉ0 पचौरी का सुझाव था कि शिक्षकों को उत्साहवर्धक वातावरण समान रूप से दिया जाय तथा समस्त सुविधायें तुरन्त दी जानी चाहिये । अध्यापक को समाज का सबसे अधिक वेतन पाने वाला व्यक्ति कर दिया जाय ।

अन्त में डॉ0 पचौरी ने परीक्षा में गुणात्मक ह्रास के लिये छात्र संघों, अध्यापक संघों व वर्तमान परीक्षा प्रणाली को भी दोषी ठहराया तथा उन्होंने कहा कि गुणावत्ता को बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि छात्र संघों के चुनाव की पद्धति को बदला जाय । शिक्षक संघों की भूमिका सृजनात्मक हो तथा परीक्षा पद्धति को पूर्णरूप से बदलने की आवश्यकता है तभी उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बनाये रखा जा सकता है ।

डॉ0 बीना शाह शिक्षा संकाय ने "उच्च शैक्षणिक, संस्थाओं में अध्यापकों के चयन, प्रशिक्षण एवं ज्ञान के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सुधार हेतु संस्तुतियां नामक पत्र प्रस्तुत किया । डॉ0 बीना शाह ने अपने पत्र में कहा कि

शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक का अत्यन्त महत्व है, क्योंकि अध्यापक के द्वारा ही शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रियाओं को लागू किया जाता है । जो कारक शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रियाओं के प्रभावों को निर्धारित करते हैं, वे हैं- पर्यावरण एवं संस्थात्मक कारक, अध्यापक की शैक्षणिक प्राप्ति व मनोवैज्ञानिक विशेषतायें, शैक्षिक नीतियां, निर्णय करने की संरचना, पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु एवं मूल्यांकन तकनीकी तथा स्वासामाजिक परिवर्तन ।

शिक्षकों के चुनाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में डॉ0 शाह का विचार है कि इसमें परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है, शिक्षकों के चयन के समय शैक्षिक योग्यता, अभिरुचि, सम्प्रेषण क्षमता, वैज्ञानिक मनोवृत्ति, तथा भाषाई दक्षता को ध्यान में रखना चाहिये । शिक्षकों के व्यवहार के संदर्भ में डॉ0 शाह की राय है कि शिक्षकों को राजनीतिक से अलग रखने का प्रयत्न किया जाना चाहिये । शिक्षकों के लिए आचार संहिता बनाई जानी चाहिये कि वे राजनीतिक में सक्रिय भाग लेने की बजाय विश्वविद्यालय विकास, प्रशासन तथा शैक्षणिक गुणवत्ता को उच्च स्तर का बनाने में अधिक योगदान दें । उन्होंने यह राय भी प्रकट की कि उच्च शिक्षा में शिक्षकों को चयन के पश्चात् एक वर्ष का प्रशिक्षण शिक्षण प्राविधि में दिया जाय । सेवाकाल के दौरान अल्पकालीन प्रशिक्षण व्यवस्था की जानी चाहिये ताकि उसके सम्प्रेषण तथा ज्ञानवर्द्धन को समीचीन बनाया जा सके । समीचीन व्यवस्था के लिये रेडियो, टेलीविजन, रेडियो टेप, आदि आधुनिक संचार साधनों का प्रयोग किया जाय । शैक्षिक वातावरण को बनाये रखने के सम्बन्ध में डॉ0 शाह ने सुझाव दिया कि शिक्षकों तथा छात्रों द्वारा पठन-पाठन कार्यक्रमों के अन्तर्गत ट्यूशनल क्लासेस, संगोष्ठी, सम्भाषण तथा सामूहिक अध्ययन वृत बनाकर ज्ञान वर्द्धन करना चाहिये । इसके लिए विश्वविद्यालय द्वारा सभी तरह की सुविधायें उपलब्ध की जानी चाहिये ।

"उच्च शिक्षा नीति और हिन्दी का अध्ययन" नामक विषय पर डॉ0 हरिमोहन (हिन्दी विभाग) ने अपना पत्र प्रस्तुत किया । उन्होंने कहा- सरकार द्वारा सारे देश में बहस के लिए प्रकाशित दस्तावेज "शिक्षा की चुनौती (नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य) में मूल्यों के तेजी से हो रहे ह्रास तथा परिणाम

स्वरूप सार्वजनिक जीवन में व्याप्त प्रदूषण पर चिन्ता व्यक्त की गई है । साथ ही कहा गया है कि काफी संख्या में उच्च शिक्षा की संस्थाओं से ऐसे लोग निकलते हैं, जिनके पास थोड़ा- बहुत पुस्तकीय क्षमता, कमजोर भाषा तथा सीमित सम्प्रेषण-क्षमता और सीमित विश्व दृष्टिकोण होता है तथा उनमें किसी प्रकार की सामाजिक तथा राष्ट्रीय जिम्मेदारी की प्रवृत्ति का अभाव रहता है ।

उपर्युक्त समस्या बहुत बड़ी सीमा तक भाषा और साहित्य के अध्ययन से जुड़ी है और हमारे विचार से तो अपनी संस्कृति, परम्परा और विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रसार जितना अधिक विश्वसनीय ढंग से हिन्दी के अध्ययन से हो सकता है, उतना किसी और विषय से नहीं । आश्चर्य है कि सरकार के इस दस्तावेज में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन पर कोई चर्चा नहीं है ।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन मुख्यत: दो स्तरों पर होता है- एक, भाषा के स्तर पर, दूसरे, साहित्य के स्तर पर । एक तीसरा स्तर और है, वह है भाषा और साहित्य के अनुसंधान का स्तर ।

भाषा के स्तर जो अध्ययन होता है वह पर्याप्त नहीं है । इसका उद्देश्य भाषा का अच्छा ज्ञान कराना होता है, ताकि उन विभिन्न पदों के लिये सुयोग्य ग्रेजुएट तैयार हो सकें, जिनके लिए भाषा का विशेष ज्ञान आवश्यक है । इसके लिए हमारा सुझाव है कि विभिन्न सेवा-संस्थाओं, सरकारी-गैर सरकारी या अर्द्धसरकारी प्रतिष्ठानों से उनकी आवश्यकताएं पूछ कर तदनुसार ऐसा पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाय, जिसमें अनुवाद-कला, टिप्पणी लेखन, भाव पल्लवन, संक्षेपीकरण, कार्यालयी आज्ञा, टिप्पणी, सूचना, अधिसूचना, इत्यादि का व्यावहारिक ज्ञान हो । निरन्तर अभ्यास हो । विभिन्न क्षेत्रों की शब्दावली का आवश्यक ज्ञान निर्धारित हो । विज्ञान, तकनीकी, कृषि, वाणिज्य-व्यापार, प्रशासकीय और सार्वजनिक क्षेत्रों की प्रचलित और आवश्यक शब्दावली का ज्ञान कराया जाय ।

साहित्य के स्तर पर अपनी समूची साहित्यिक परम्परा का मानवीय चिन्ताओं और समस्याओं के संदर्भ में ज्ञान कराया जाना आवश्यक है । साहित्य चाहे प्राचीन पढ़ाया जाय या मध्ययुगीन, समकालीन अथवा क्षेत्रीय ।

उसके अध्ययन-अध्यापन में यह ध्यान दिया जाय कि हमारे विद्यार्थियों में चिन्तन, मनन की शक्ति, मानवमूल्यों के पोषण और व्याख्या की क्षमता, राष्ट्रीय एकता की भावना और अनिवार्यतः रचनाक्षमता का विकास हो सके। साहित्य में ही किसी देश की सांस्कृतिक विरासत सुरक्षित है। इक्कीसवीं सदी के टैक्नालॉजी या कम्प्यूटर युग के सपने सुखद जरूर हैं, लेकिन कहीं ऐसा न हो कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत के मूल्यवान पक्षों को पीछे छोड़ दें।

अंत में भाषा और साहित्य के अनुसंधान के स्तर पर भी दो शब्द। केवल हिन्दी ही नहीं अन्य विषयों में अनुसंधान के स्तर के घटने पर चिन्ता व्यक्त की जाती है। इसके लिए हमारा सुझाव है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अथवा कोई अन्य स्वतंत्र अनुसंधान परिषद् समूचे देश के विश्वविद्यालयों में शोधकार्य के विषयों का पंजीकरण अपने यहां से करे। साथ ही विभिन्न क्षेत्र के विश्वविद्यालयों को किसी एक या अधिक विषयों के लिए केन्द्र स्वीकृत कर दें। शोधकर्ता चाहे किसी विश्वविद्यालय में कार्य करे वह उस केन्द्र पर अध्ययन के लिए आवश्यक रूप से जाय। इसके अतिरिक्त तैयार शोध प्रबन्ध भी विश्वविद्यालयों के माध्यम से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या अन्य स्वतंत्र अनुसंधान परिषद् में मूल्यांकन के लिए जमा हो और वहीं से विशेषज्ञों के पास मूल्यांकन के लिए भेजा जाय।

तृतीय-सत्र

तृतीय सत्र में डॉ० डी०डी० मैठानी, प्राध्यापक भूगोल, टिहरी के "वर्तमान मूल्यांकन पद्धति की कमियां तथा उनको दूर करने के सुझाव" नामक पत्र को उनकी अनुपस्थिति में डॉ० एन०एस० विष्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया। उनके पत्र में इस बात का उल्लेख किया गया है कि राजनीति के फलस्वरूप शिक्षा पद्धति मूल्यहीनता की चपेट में आ गई है तथा वर्तमान शिक्षा से समाजीकरण नहीं हो पा रहा है। इसलिए इस समस्या का हल पूरी शिक्षा व्यवस्था के विश्लेषण करने पर ही सम्भव है। उनके अनुसार नैतिक मूल्यों के पतन के फलस्वरूप ही अधिकांश अध्यापक अपने को वास्तविक अध्यापक न समझकर केवल वेतन भोगी कर्मचारी ही समझते हैं। छात्र भी अपने गुरु को वास्तविक गुरु नहीं समझते

हैं । इन परिस्थितियों में शिक्षा का प्रगति पथ पर अग्रसर होना अत्यन्त कठिन है । उन्होंने कहा कि भ्रष्टाचार का प्रभाव शिक्षा संस्थाओं पर भी पड़ रहा है । जिसके फलस्वरूप मूल्यांकन पद्धति में अनेक कमियां आ गई हैं । परिणामस्वरूप शिक्षा के स्तर में पर्याप्त गिरावट आयी है ।

मूल्यांकन पद्धति की कमियों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि अधिकतर शिक्षकों द्वारा मूल्यांकन में लापरवाही बरती जाती है । विशेष रूप से केन्द्रीय मूल्यांकन पद्धति में, प्राय: शिक्षक ध्यान अर्जित करने आते हैं । मूल्यांकनकर्ता की नियुक्ति योग्यतानुसार या विशेषीकरण के आधार पर नहीं की जाती । इसलिए मूल्यांकनकर्ता में विशेषीकृत प्रश्नपत्रों के मूल्यांकन करने में प्राय: ज्ञान का अभाव रहता है । मूल्यांकन में जाति, धर्म एवं राजनैतिक आधार पर पक्षपात किया जाता है, जिसके कारण योग्य छात्र पीछे रह जाते हैं । साथ ही मूल्यांकनकर्ता पर बाह्य दबाव डालकर मूल्यांकन को प्रभावित करने के लिये बाध्य किया जाता है । उन्होंने इस बात पर बल दिया कि विद्यार्थियों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए । जिसका प्रतिशत वार्षिक परीक्षा में जुड़ना चाहिए। मूल्यांकन पद्धति की अन्य कमियों में उन्होंने औसत मूल्यांकन में विलम्ब, प्रश्नपत्रों के गलत ढंग से निर्माण तथा मूल्यांकन कार्य में गोपनीयता न रहने को दोषी बताया तथा इन्हें दूर करने के लिये उन्होंने कहा कि किसी प्रश्नपत्र की कापियां खोने पर औसत अंक प्रदान न किये जांय, अपितु अलग से परीक्षा ली जाय । मूल्यांकन कार्य में विलम्ब को रोकने के लिये उनका सुझाव था कि मूल्यांकन कार्य निर्धारित अवधि के अन्तर्गत किया जाना चाहिए तथा मूल्यांकन की गोपनीयता को बनाये रखने के लिये प्रयास किया जाना चाहिए ।

श्री एन0सी0 जोशी एवं डॉ0 जे0पी0 पचौरी, समाजशास्त्र विभाग, ने संयुक्त रूप से "उच्च शिक्षा में वर्तमान मूल्यांकन की कमियां तथा उसे दूर करने हेतु सुझाव" नामक पत्र डॉ0 जे0पी0 पचौरी द्वारा प्रस्तुत किया गया । पत्र में वर्तमान मूल्यांकन पद्धति की कमियों में निबन्धात्मक प्रश्नों का होना तथा विकल्प के रूप में कुछ प्रश्नों को हल करना, वार्षिक परीक्षा के आधार पर मूल्यांकन, विश्वविद्यालय के अन्दर ही मूल्यांकन होने से भाई-भतीजावाद व भ्रष्टाचार का पनपना, मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता का अभाव, अध्यापकों द्वारा

मूल्यांकन को व्यवसाय के रूप में अपनाना, परीक्षकों द्वारा अन्य व्यक्तियों से कापी जंचवाना, मूल्यांकन का परीक्षक की व्यक्तिगत परिस्थितियों से प्रभावित होना, समाज का नैतिक पतन होने से अध्यापकों का भी नैतिक पतन होना तथा शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे व्यक्तियों का पदार्पण होना जो नकल करना या कराना बुरा नहीं मानते, आदि का वर्णन किया । इन समस्त कमियों के रहने से मूल्यांकन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है । इसलिए इन कमियों को दूर किया जाय ।

पत्र में मूल्यांकन पद्धति में गुणात्मक सुधार लाने के लिये अनेक सुझाव दिये गये । पत्र में कहा गया कि प्रश्नों की रचना इस प्रकार की जानी चाहिए कि सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व हो । निबन्धात्मक प्रश्नों का प्रतिशत 15 तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का प्रतिशत 85 होना चाहिए । सभी प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य किया जाय । विश्वसनीयता एवं वैधायिकता के लिये परीक्षकों द्वारा मूल्यांकन का मापदण्ड निश्चित् करना चाहिए । परीक्षकों की नियुक्ति को गोपनीय रखा जाय । नकल को रोकने में सहायता करने वाले अध्यापकों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जाय । उन अध्यापकों व कर्मचारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाय, जो नकल कराने को प्रोत्साहित करते हैं । परीक्षायें मासिक की जायं तथा इनका कुछ प्रतिशत वार्षिक मूल्यांकन में जोड़ दिया जाय । इससे पूरे वर्ष छात्रों में अध्ययन करने की प्रवृत्ति का विकास होगा । विश्वविद्यालयों द्वारा मूल्यांकन कार्य केवल शिक्षकों से ही कराया जाय । प्रत्येक विश्वविद्यालय की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन उन विश्वविद्यालयों से बाहर के विश्वविद्यालयों के अध्यापकों द्वारा कराया जाय । परीक्षकों के लिये मूल्यांकन के सम्बन्ध में हर वर्ष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जायं । पाठ्यक्रमों में मूल्यांकन के समस्त पक्षों से अवगत कराया जाय । विश्वविद्यालयों द्वारा समस्त अध्यापकों को समान रूप से मूल्यांकन कार्य दिया जाय, क्योंकि प्राय: ऐसा देखा जाता है कि कुछ प्रभावकारी प्राध्यापक धन कमाने के उद्देश्य से अपनी सीमा से अधिक मूल्यांकन कार्य ले लेते हैं । ऐसा करने से मूल्यांकन कार्य में निष्पक्षता नहीं रह पाती है । अन्त में पत्र में कहा गया है कि डिग्री योग्यता का प्रमाणपत्र न समझी जाय, क्योंकि अगर ऐसा समझा जायेगा तो प्रभावकारी लोग मूल्यांकन की प्रणाली को प्रभावित करते रहेंगे ।

चतुर्थ-सत्र

शिक्षा विभाग के डॉ0 के0बी0 बुधोड़ी ने "भारतीय उच्च शिक्षा तथा विकसित राष्ट्रों की उच्च शिक्षा में अन्तर तथा सुधार के सुझाव" पर पत्र पढ़ा । प्रारम्भ में उन्होंने दोनों प्रकार के देशों में शिक्षा में पाये जाने वाले अन्तरों की चर्चा की । उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि नकल की गई भारतीय उच्च शिक्षा पद्धति देश की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है । भारतीय शिक्षा पद्धति में जो कमियां हैं वे विदेशों की शिक्षा पद्धति में नहीं हैं । डॉ0 बुधोड़ी ने भारतीय शिक्षा पद्धति में आवश्यक सुधार किए जाने हेतु सुझाव दिया कि शिक्षा पद्धति देश की परिस्थितियों एवं साधनों के अनुकूल होनी चाहिए । यह प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों- नालन्दा एवं तक्षशिला की तरह उच्च आदर्शों वाली हो । समस्त देश के लिए एक माध्यम होना चाहिए तथा यह हिन्दी हो । पाठ्यक्रम राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुरूप हों । प्रवेश तथा परीक्षा प्रणाली कठोर एवं विश्वसनीय होनी चाहिए । केवल उच्च सकारात्मक अभिरुचि रखने वालों को ही उच्च शिक्षा दी जाय । शोध कार्य राष्ट्रीय सामाजिक एवं स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप हो । शिक्षा के पश्चात् देश में रहकर सेवा करना आवश्यक कर दिया जाय । रोजगार के पर्याप्त अवसर होने चाहिए । चरित्र के निर्माण में शिक्षा सहायक हो । विश्वविद्यालय के सभी स्तरों पर नियुक्तियां कठोर चयन द्वारा हो । योग्य व्यक्ति ही विश्वविद्यालय सेवा में लिए जायं । विश्वविद्यालयों को पूर्ण स्वायतता दी जाय । पुस्तकालय, विज्ञान एवं तकनीकी का विकास किया जाय । पर्याप्त वित्तीय साधनों की व्यवस्था की जाय तथा राजनीति से उच्च शिक्षा को अलग रखा जाय ।

दूसरा पत्र शिक्षा विभाग के ही डॉ0 आर0एस0 यादव ने "नई शिक्षा नीति-कुछ सुझाव" पर प्रस्तुत किया । डॉ0 यादव ने स्पष्ट किया कि सामाजिक आवश्यकताओं तथा आशाओं को पूर्ण करने हेतु शिक्षा प्रबन्ध में क्षेत्रीय, प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है । जिससे भारतीय शिक्षा पद्धति की अन्तराष्ट्रीय स्तर पर उच्च समझी जा सके । शिक्षा प्राप्त करने वालों की आयु तथा मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तरों हेतु उचित पाठ्यक्रमों का निर्धारण किया जाय ।

शैक्षणिक प्रबन्ध, जिसमें प्राईमरी स्तर, सेकेण्डरी स्तर तथा उच्च स्तर सम्मिलित हैं, तकनीकी तथा स्वास्थ्य शिक्षा प्रबन्ध, औद्योगिक शिक्षा एवं शोध, कुटीर उद्योगों एवं रोजगार परक शिक्षा तथा साक्षरता में पूर्णता की दृष्टि से एक दीर्घकालीन शिक्षा प्रबन्ध योजना बनायी जाय । प्रत्येक व्यक्ति को स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा देना आवश्यक नहीं है । शिक्षा को स्तरानुसार वर्गीकृत करके उसे रोजगार परक बनाया जाय । सेकण्डरी स्तर के पश्चात् विभिन्न दिशाओं में प्रशिक्षण की व्यवस्था कर शिक्षा को रोजगार से जोड़ा जाय । जहां शिक्षा का स्नातक स्तर आवश्यक हो, वहां स्नातक स्तर की शिक्षा के बाद प्रशिक्षण की व्यवस्था द्वारा रोजगार से शिक्षा को सम्बन्धित किया जाय । स्नातकोत्तर स्तर पर कठोर चयन प्रणाली द्वारा चयनित व्यक्तियों को ही शिक्षा दी जाय ।

शिक्षा के उचित प्रशासन हेतु हर स्तर पर पर्याप्त योग्यता के व्यक्तियों का ही चयन किया जाय । प्राइमरी स्तर पर शिक्षा में वास्तविक सुधार की आवश्यकता है । अतः प्राइमरी स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक समान योग्यता वाले व्यक्तियों द्वारा शिक्षा दी जाय तथा समान योग्यता, कार्य एवं वेतन का सिद्धान्त अपनाया जाय । विदेशों में इसका अनुसरण किया गया तथा अच्छे परिणाम मिले हैं । भारत में भी इसे अपनाया जाना चाहिए । विश्वविद्यालय स्तर पर प्राध्यापकों की नियुक्ति हेतु पी०एच-डी० आवश्यक कर दी जाय ।

परीक्षा व्यवस्था में यथोचित सुधार हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सुझाए गये परीक्षा में सुधार कार्य योजना 1974 का अनुकरण करते हुए प्रश्न बैंक, आन्तरिक कार्य तथा ग्रेडिंग का कठोरता से पालन किया जाय । सभी क्षेत्रों में शिक्षा के समुचित विकास हेतु स्त्री शिक्षा, अनियमित एवं नियमित शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा प्रशिक्षण एवं वित्तीय साधनों के आंवटन इत्यादि को पर्याप्त महत्व दिया जाय । शिक्षा स्तर में वृद्धि लाने एवं राष्ट्र के नवयुवकों को सभ्य नागरिक बनाने हेतु नैतिकता, चरित्र, ईमानदारी, कर्तव्य निष्ठता एवं विश्वसनीयता आदि का भी शिक्षा द्वारा विकास करने की व्यवस्था की जाय । सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में संरचनात्मक, संगठनात्मक एवं नियोजन स्तर पर उचित परिवर्तन किए जायं । ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र को भी इस दृष्टि से समान समझा जाय । इन समस्त तथ्यों के आधार पर

शिक्षा के समुचित विकास हेतु एक दीर्घकालीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति की योजना बनाई जाय ।

तृतीय पत्र "उच्च शिक्षा नीति: एक दृष्टिकोण" अर्थशास्त्र विभाग के श्री के०एन० जोशी द्वारा पढ़ा गया । श्री जोशी का दृष्टिकोण अन्य समस्त वक्ताओं से भिन्न था । उनके विचार में वर्तमान विश्वविद्यालयी शिक्षा पद्धति में शिक्षण एवं शोध दोनों के ही स्तरों में पर्याप्त ह्रास हो चुका है । अत: इसमें गुण की समस्या ही प्रधान समस्या है । शिक्षण एवं शोध वास्तव में अलग-अलग विशिष्टता रखते हैं । अत: इन दोनों का विकास, विशिष्टीकरण के सिद्धान्तानुसार एक दूसरे से अलग करके किया जाय । स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षण में, उचित गुणवत्ता एवं सुधार लाकर ही शोध कार्य में भी गुणवत्ता प्राप्त की जा सकती है ।

विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा में वास्तविक सुधार के लिए विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में दो प्रकार की समान्तर व्यवस्थायें हों- प्रथम, शिक्षण एवं द्वितीय, शोध । दोनों वर्गों की योग्यतायें विवेकपूर्ण ढंग से निर्धारित की जाय। दोनों को समान दर्जा एवं समान वेतन दिया जाय । उन्नति के अवसर एवं प्राविधान भी समान ही होने चाहिए । दोनों वर्गों की नियुक्ति पर्याप्त योग्यता के आधार पर ईमानदारी के साथ की जाय । वर्तमान योग्यताओं के अतिरिक्त प्राध्यापकों की नियुक्ति में साक्षात्कार के साथ क्लास एवं टीचिंग तथा शोधकर्ता की नियुक्ति में साक्षात्कार के साथ किसी समस्या पर शोध हेतु प्रारूप की रचना एवं शोध विधि पर लेखन आदि को सम्मिलित किया जाय, जिससे कि उपयुक्त रुचि एवं योग्यता का व्यक्ति ही नियुक्त हो सके ।

गुण में वास्तविक सुधार हेतु आवासीय समस्या को भी हल करना पर्याप्त महत्व रखता है ।

चतुर्थ पत्र भूगर्भ विज्ञान के डॉ० चितरंजन प्रसाद द्वारा पढ़ा गया । शीर्षक था- "नई शिक्षा नीति" । उन्होंने कहा कि भारतीय शिक्षा पद्धति ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत, एक अल्प शिक्षित मध्यवर्ग के निर्माण हेतु अपनायी गई थी । आज के स्वतन्त्र एवं प्रजातंत्रात्मक भारत की परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त है । अत: इसमें उचित परिवर्तन किए जाने चाहिए । शिक्षा

प्रणाली एवं पद्धति देश के नागरिकों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी होनी चाहिए ।

क्या यह उचित है कि शिक्षा को रोजगार से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित किया जाय तथा डिग्री देने वाली वर्तमान व्यवस्था बन्द कर दी जाय । प्रश्न आता है कि यदि कारखाने इन्जीनियर्स का तथा अस्पताल डाक्टर्स का उत्पादन करने लगेंगे तो वर्तमान महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का क्या होगा । फिर, क्या भारत में इस प्रकार की साधान सम्पन्न फैक्ट्रियां एवं अस्पताल हैं । क्या फैक्ट्रीज एवं अस्पतालों की स्थापना का यही उद्देश्य होता है । अतः हमें अपनी वर्तमान शिक्षा संस्थाओं को इन संस्थाओं से सम्बन्धित करना चाहिए । इसके साथ ही देश भर में मॉडल स्कूलों की स्थापना की जानी चाहिए ।

इस सत्र का अन्तिम पत्र प्रौढ़ शिक्षा के डॉ० अरूण मिश्र द्वारा पढ़ा गया । शीर्षक था-"विश्वविद्यालय एवं प्रसार कार्य" । डॉ० मिश्र ने वर्तमान में विश्वविद्यालयों द्वारा चलाए जा रहे प्रसार कार्य को महत्वपूर्ण मानते हुए विचार व्यक्त किया कि पुराने पाठ्यक्रमों को परिवर्तित कर इसे वर्तमान प्रसार कार्य के अनुरूप बनाया जाना चाहिए । पुरानी शिक्षा प्रणाली सामयिक एवं सामाजिक समस्याओं का हल करने तथा स्थानीय संसाधानों का उपयोग करने में अनुपयोगी सिद्ध हुई है । अभी तक उच्च शिक्षा संस्थाओं का लाभ मात्र शहरी क्षेत्र के लोगों को ही मिलता रहा है । असमानताएं बढ़ी है । अतः विश्वविद्यालयों द्वारा पाठ्यक्रमों एवं शिक्षण व्यवस्था का पुर्नसंगठन करना चाहिए । सम्पूर्ण समुदाय के लाभ हेतु विश्वविद्यालयों को लचीले विविधतापूर्ण तथा नई तकनीक एवं विस्तृत कार्य क्षेत्र वाले प्रतिमान स्थापित करने चाहिए तथा इस हेतु प्रसार कार्य को उचित महत्व दिया जाय ।

संगोष्ठी में पारित सुधार के सुझाव

उच्च शिक्षा का उद्देश्य

(1) उच्च शिक्षा का उद्देश्य उत्कृष्ट, परिस्कृत, स्वावलम्बी, चरित्रवान, सुसंस्कृत तथा राष्ट्रभक्त प्रतिभाशाली युवाशक्ति उत्पन्न करना होना चाहिये ।

(2) उच्च शिक्षा को किसी न किसी रूप में उत्पादन वृद्धि कारक व ज्ञान का बोधागम्य होना चाहिये ।

(3) उच्च शिक्षा का उद्देश्य भारतीय संस्कृति तथा सामाजिक मूल्यों को आत्मसात कर गिरते हुए नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सक्षम बनाना होना चाहिए ।

व्यावहारिकता

(1) उद्देश्यों के अनुरूप उच्च शिक्षा का व्यावहारिक जीवन से समुचित तालमेल होना चाहिए । वर्तमान परिस्थितियों में उच्च शिक्षा प्रणाली में सुधार की नितान्त आवश्यकता है, ताकि उच्च शिक्षा प्राप्त युवाशक्ति स्वगृह से पलायन करने की अपेक्षा निजी व्यवसाय प्रारम्भ करने में सक्षम हो सके ।

(2) वर्तमान वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली को उच्च शिक्षा स्तर पर व्यावहारिक जीवन से जोड़ा जा सकता है । जिसमें युवकों को उच्च सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ-साथ रेडियो निर्माण, इलेक्ट्रोनिक सामग्री बनाना, फोटो कैमरा तैयार करना, बिजली से चलने वाली वस्तुओं की मरम्मत, आदि जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण करने का ज्ञान दिया जाना चाहिए ।

(3) उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त युवाशक्ति (प्रतिभा) पलायन रोकने के लिए पूर्ण प्रयास किये जाने चाहिये । इन प्रतिभाओं का उपयोग अपने ही देश में करने के लिये समुचित मानव संसाधान नियोजन के अनुसार उद्योगों से समन्वय स्थापित करके किया जाय ताकि हमारे राष्ट्र को उच्च तकनीकी शक्ति हमारे ही देश के औद्योगीकरण को उत्पादन बधक तथा आधुनीकृत करने में सक्षम हो सकें ।

शिक्षक

1. विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के लिए शिक्षकों का चयन एक अखिल भारतीय उच्च शिक्षा परिषद् द्वारा की जानी चाहिए । चयन के पश्चात् शिक्षकों को प्रशिक्षण आवश्यक माना जाय ताकि शिक्षकों की गुणवत्ता तथा सम्प्रेषण क्षमता में सुधार लाया जा सके । सेवाकाल में निरंतर प्रशिक्षण व शोध विधि प्रशिक्षण व्यवस्था की जानी चाहिये ।

2. शिक्षकों को समाज का सबसे अधिक वेतन पाने वाले व्यक्ति कर दिया जाय । उनके लिये आवास, स्वास्थ्य सेवा, पठन-पाठन सामग्री, आधुनिकतक अनुसंधान सामग्री, विभागीय पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं में उपलब्ध कराई जायं ।

3. शिक्षकों के लिये एक वर्ष के प्रशिक्षण के साथ-साथ शिक्षण प्राविधि भी सम्मिलित की जायं ।

4. उच्च शिक्षा में शिक्षकों के चुनाव प्रक्रिया में परिवर्तन नितान्त आवश्यक है । शिक्षकों के चुनाव के समय शैक्षिक योग्यता के साथ, उसकी अभिरुचि, सम्प्रेषण क्षमता, वैज्ञानिक मनोवृत्ति, सेवावृत्ति तथा भाषाई क्षमता को भी ध्यान में रखा जाय ।

5. शिक्षकों की प्रोन्नति सेवाकाल की अपेक्षा गुणशीलता व ज्ञानकोष में अभिवृद्धि के आधार पर की जानी चाहिये । शिक्षकों के ज्ञानवर्धन के लिये सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध कराई जानी चाहिये ।

6. शिक्षकों को राजनीति से अलग रखने का हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिये । शिक्षकों के लिए एक आचार संहिता बनाई जानी चाहिये ताकि वे राजनीति में सक्रिय भाग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लेने की अपेक्षा विश्वविद्यालय के विकास, प्रशासन तथा शैक्षणिक गुणवत्ता को उच्च स्तर का बनाने में अधिक योगदान दे सकें ।

7. शिक्षकों तथा छात्रों के बीच मधुर सम्बन्ध बनाने तथा शैक्षणिक वातावरण बनाने के लिये शिक्षकों का उत्तरदायित्व होना चाहिये कि पठन-पाठन कार्यक्रमों में ट्यूटोरियल क्लास, संगोष्ठी, सम्भाषण तथा सामुहिक अध्ययन वृत बनाने पर ध्यान दें । इन कार्यों के लिये विश्वविद्यालयों द्वारा सभी सुविधाएं

उपलब्धा की जानी चाहिये ।

8. शिक्षकों के ज्ञान तथा उच्च शिक्षण व्यवस्था को आधुनीकृत करने हेतु सुझाव है कि विषय सम्बन्धी ज्ञान को समीचीन बनाने के लिए रेडियो, दूरदर्शन, रेडियो टेप, आदि आधुनिक संचार व्यवस्था का लाभ उठाया जाना चाहिए । विश्वविद्यालयों के प्रत्येक विभाग में इस प्रकार के संचार साधनों की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

9. शिक्षकों, छात्रों तथा उच्च शिक्षा में गुणवत्ता बनाये रखने तथा राजनीति से दूर रखने के लिये यह भी आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षकों व कुलपतियों की नियुक्तियाँ विशुद्ध ज्ञान, विद्वता तथा निष्पक्षा रूप से की जानी चाहिये । अत: वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन करके अखिल भारतीय स्तर पर चयन किया जाना चाहिये ।

10. विश्वविद्यालयीय शिक्षकों को समान स्तरीय प्रशासनिक सेवा अधिकारियों की भाँति समस्त सुविधायें उपलब्धा कराई जानी चाहिये ।

11. विश्वविद्यालय के शिक्षकों तथा स्नातकोत्तर छात्रों को स्थानीय तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिये ।

छात्र

1. विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा के आधार पर चयनित छात्रों को स्वेच्छा से विषय समूह चुनने की पूरी छूट दी जानी चाहिये, ताकि छात्र अपनी प्रवृत्ति तथा अभिरुचि के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सके ।

2. प्रवेश के समय छात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके उन्हें समुचित पथप्रदर्शन व्यवस्था भी दी जानी चाहिये, ताकि छात्र अपनी मानसिक शक्ति तथा वित्तीय सामर्थ्य का पूरा लाभ उठाने में समर्थ हो सकें ।

3. छात्रों के लिये उपस्थिति तथा अनुशासन सम्बन्धी आचार संहिता बनाई जानी चाहिये, जिसके आधार पर अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति के छात्रों को हटाने की व्यवस्था होनी चाहिये ।

4. अनुशासनशील व निरन्तर उपस्थित तथा अध्यायनरत छात्रों को विशेष अंक व्यवस्था भी अत्यन्त महत्वपूर्ण व प्रोत्साहन कारक होगा ।

5. विज्ञान विषयों के विभागों में छात्रों को प्रयोगशालाओं में रोजगार परक ज्ञान व प्रशिक्षण देने की व्यवस्था समुचित मात्रा में की जानी चाहिये, ताकि स्नातक व स्नातकोत्तर उपाधिधारी छात्र स्वरोजगार की ओर कदम रखाने में सक्षम हो सके ।

6. कतिपय कला विषयों में भी जीवनोपयोगी व सेवापरक कार्यों में प्रबन्धकीय, सांख्यिकीय, आर्थिक व्यवस्था तथा लेखा आदि सेवाओं का क्रियात्मक ज्ञान अथवा प्रशिक्षण व्यवस्था की जानी चाहिये, अर्थात् सेवावृत्ति के परिप्रेक्ष्य में उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों को संशोधित किया जाना चाहिये ताकि उच्च शिक्षा निरूद्देश्य न रह कर सउद्देश्य बनी रहे ।

7. छात्र संघों के विकल्प के रूप में प्रतिभाशाली छात्रों को विश्वविद्यालयों की विभिन्न समितियों में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये । छात्रों के लिये प्रत्येक विषय की संगठनों की स्थापना स्थायी आधार पर की जानी चाहिये ताकि वे विश्वविद्यालय छोड़ने के बाद भी उस संगठन से जुड़े रह कर ज्ञानबर्द्धन कर सकें ।

8. स्नातकोत्तर तथा शोध छात्रों के स्तर पर फोलोअप कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाना चाहिये, ताकि विषय सम्बन्धी ज्ञानार्जन तथा सेवा के अवसर उपलब्ध कराने में सम्बन्धित विभाग भी मार्ग दर्शन व सहायता कर सके ।

9. छात्रों के कल्याण के लिये हर सम्भव प्रयास किये जाने चाहिये । विशेष रूप से प्रतिभाशाली छात्रों की आर्थिक सहायता के लिये विशेष व्यवस्था जाति, धर्म तथा लिंग के आधार पर करने की अपेक्षा आर्थिक आधार पर की जानी चाहिये ।

शोध

1. स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा शोध परक होनी चाहिए, ताकि छात्र स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् शोध कार्य में व्यस्त रह सके । शोध प्राविधि, तकनीक तथा अनुसंधान विधि का ज्ञान शोधकर्ता को

सांख्यिकीय ज्ञान व पद्धति के लिये दिया जाना अत्यावश्यक होना चाहिये ।

2. विश्वविद्यालयों में शोध ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रयोगशालाओं, विशेषरूप से सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों के लिये विभागीय समृद्ध पुस्तकालय की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

3. वर्तमान विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों तथा अनुसंधान संस्थाओं को पुर्नसंगठित करके नियोजन प्रक्रिया द्वारा रोजगार परक, शोधापरक, उत्पादन वर्धक तथा वास्तविक ज्ञान वर्द्धक केन्द्र बनाया जाय ।

4. राष्ट्रीय स्तर पर बहुत बड़े-बड़े शोध संस्थान स्थापित किये गये हैं, जिनका न तो विश्वविद्यालयों के साथ कोई समन्वय है और न वास्तविक उद्योग अथवा व्यवसायों से । अत: सुझाव है कि इन राष्ट्रीय शोध संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों के शोध कार्यों में समन्वय तथा सामंजस्य स्थापित किया जाय ताकि ये संस्थायें मौलिक, व्यावहारिक, ज्ञानवर्द्धक तथा उत्पादन वृद्धिकारक शोध कार्यों को प्रोत्साहन दे । अनुसंधान को स्रोतों तथा औद्योगिक इकाईयों में पहुँचाया जा सके ।

5. राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षण व प्रशिक्षण संस्थाओं, सरकारी विभागों, तथा उद्योगों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये तथा रोजगार के अवसरों (मांग) के अनुसार उच्च शिक्षा दी जानी चाहिये ।

6. शोध कार्यों के लिए मौलिकता, व्यावहारिकता तथा उत्पादकता परक विषयों को प्राथमिकता दी जाय । शोध का लाभ व्यावहारिक जीवन में उद्योगों तथा विकास परियोजनाओं में सुधार तथा उत्पादकता वृद्धि करने के प्रयोग में लाई जानी चाहिये ।

7. शिक्षा में विशेषरूप से विश्वविद्यालयों के पठन-पाठन कार्य तथा शोध कार्य को अलग किया जाय । मौलिक, राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय विकास सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिये किये जाने वाले शोध कार्यों के लिये विषयवार विभागीय पूर्णकालीक अनुसंधान शाखा स्थापित की जानी चाहिये, ताकि उन अनुसंधानों का लाभ शोध छात्रों तथा अन्य शिक्षकों को भी प्राप्त हो सके ।

परीक्षा

1. उच्च शिक्षा में बेरोजगारों की सेवा बढ़ाने वाली तृतीय श्रेणी को समाप्त किया जाना चाहिये, ताकि उपाधि विष्फोटक की स्थिति नियंत्रण में रखी जा सके ।

2. कतिपय विश्वविद्यालयों में परीक्षा सेल की स्थापना की गई है जो प्रश्नपत्रों आदि का मोडीफिकेशन करके सुधार करता है । परीक्षा की कमियों को दूर करने के उपाय करता है । समस्त विश्वविद्यालयों में इस प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिये, ताकि छात्रों के साथ अन्याय न हो ।

3. परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिये आवश्यक है कि प्रश्न पत्रों के निर्माण के समय ध्यान रखा जाय कि प्रश्न पत्र समस्त पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करता है या नहीं । प्रश्न पत्र निबन्धात्मक की अपेक्षा अधिक उद्देश्य परक तथा वस्तुनिष्ठ होना चाहिये ।

4. नकल प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाले शिक्षकों को परीक्षक नहीं बनाया जाना चाहिये । ऐसे छात्रों, शिक्षकों तथा कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी चाहिये, जो परीक्षा की गोपनीयता को भंग करके स्वार्थ सिद्धी में लगे रहते हैं ।

5. विश्वविद्यालयों द्वारा ऐसे लोगों को परीक्षक नहीं नियुक्त करना चाहिये जो शिक्षक न हों या शिक्षक न रहे हों ।

मूल्यांकन

1. विश्वविद्यालयों में गुणवत्ता तथा ज्ञान परक शिक्षा स्तर बनाने के लिए मूल्यांकन पद्धति बदलकर आन्तरिक मूल्यांकन प्रारम्भ किया जाय । वर्तमान आई0 आई0टी0 संस्थानों की भांति चयन सीमित संख्या में किया जाना चाहिये तथा मूल्यांकन प्रणाली भी इसी प्रकार की अपनाई जानी चाहिये ।

2. वर्तमान मूल्यांकन पद्धति में परीक्षक छात्रों का सही मूल्यांकन नहीं करते हैं । मूल्यांकन का उद्देश्य धनार्जन की अपेक्षा न्याय होना चाहिये ।

3. मूल्यांकन के लिये प्राय: अनुभवहीन तथा अयोग्य परीक्षकों की नियुक्तियों की जाती हैं जो छात्रों के साथ अन्याय का द्योतक है । परीक्षा प्रणाली पर यह

कलंक है, जो हर दशा में समाप्त किया जाना चाहिये ।

4. मूल्यांकन में पक्षपात तथा वाह्य दबावों के कारण प्रतिभाशाली छात्रों के साथ खिलवाड़ किया जाता है । इस ओर विशेष सुधार की आवश्यकता है । इसके लिए आंतरिक परीक्षा तथा वाह्य परीक्षा दोनों को समान महत्व दिया जाना चाहिये ।

5. मूल्यांकन में सुधार लाने तथा शिक्षा में गुणशीलता लाने के लिये उच्च शिक्षा में तिमाही-छमाही आन्तरिक सत्र परीक्षा के रूप में लागू की जानी चाहिये ।

6. मूल्यांकन में विलम्ब, औसत मूल्यांकन, प्रश्नपत्रों का गलत निर्माण, आदि, भ्रष्ट प्रवृत्तियों को समाप्त करने के कठोर कदम उठाये जाने चाहिये । इस प्रकार के कुकृत्यों के लिये जिम्मेदार व्यक्तियों को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिये । ऐसे शिक्षकों को अर्थदण्ड के अतिरिक्त हमेशा के लिए अनुपयुक्त घोषित किया जाय ।

7. मूल्यांकन को प्रभावशाली बनाने के लिए केन्द्रीय मूल्यांकन पद्धति अपनाना अधिक हित कर माना गया है, परन्तु उसमें भी उत्तर पुस्तिकाओं की जांच की प्रतिदिन की सीमा निर्धारित की जानी चाहिये । अर्थात मूल्यांकन कार्य सीमित मात्रा में तथा निश्चित समय में किया जाना चाहिये ।

संसाधन व्यवस्था

1. उच्च शिक्षा में दुर्लभ साधनों के दुरूपयोग पर रोक लगाई जाय तथा नई शिक्षा नीति अपनाने के लिये समुचित संसाधनों की व्यवस्था विभिन्न सम्बन्धित विभागों द्वारा भी की जानी चाहिये । संसाधनों को जुटाने के लिये विभिन्न व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक उद्योगों पर तकनीकी शिक्षा सेस ▮ ▮ लगाया जाय । राजकीय तथा सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा भी मानव संसाधन मांग के अनुसार व्यय भार वहन किया जाना चाहिये ।

2. भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में संसाधनों की कमी है । परन्तु शिक्षा के लिए समुचित मात्रा में वित्तीय व्यवस्था नितान्त आवश्यक है । सातवीं योजना में शिक्षा के लिये 1.7 प्रतिशत परिव्यय निर्धारित किया गया है ।

जब कि प्रथम योजना काल में 7 प्रतिशत था । अत: सातवीं योजना के अन्तिम तीन वर्षों में शिक्षा परिव्यय कम से कम 10 प्रतिशत किया जाय ।

3. उच्च शिक्षा के लिए संसाधनों की कमी पूर्ति के लिये सुझाव है कि सारे देश में अनुत्पादक, अनार्थिक तथा अनावश्यक गैर योजना को बंद कर दिया जाय या उनमें भारी कटौती की जाय । इस कटौती मद को शिक्षा पर व्यय किया जाय । साथ ही संसाधनों को बढ़ाने के लिए व्यक्तिगत स्त्रोतों का अधिकतम विदोहन करने का प्रयत्न किया जाय । अनुसंधान तथा परीक्षाओं के नाम पर किये जा रहे दान के अपव्यय पर रोक लगाई जाय ।

4. उच्च शिक्षा तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (सेक्टर्स) में समन्वय स्थापित करके उनको तकनीकी तथा अन्य प्रकार के प्रबन्धकीय मानव संसाधन तैयार करने के लिए उन क्षेत्रों से वित्तीय व्यवस्था कराई जानी चाहिये ।

5. उच्च शिक्षा को इस प्रकार पुनर्व्यवस्थित किया जाना चाहिये, ताकि छात्र उच्च शिक्षा के साथ-साथ अपने अध्ययन व्यय भार को वहन करने में सक्षम हो सकें ।

रोजगार निरपेक्षता

1. रोजगार को उपाधि निरपेक्ष बनाने के सम्बन्ध में राय है कि अर्थ व्यवस्था में समाज की समस्त सेवाओं को निरपेक्ष बनाना सम्भव नहीं है । किन्तु कुछ क्षेत्रों में, उदाहरणार्थ, आई0ए0एस0, आई0एफ0एस0, आई0पी0एस0, आदि जैसी सर्वोच्च सेवाओं के लिए, उपाधि आवश्यक नहीं है । अर्थव्यवस्था की प्रमुख सेवाओं की समुचित व्यवस्था हेतु अखिल भारतीय तकनीकी परिषद् स्वास्थ्य एवं चिकित्सा परिषद्, प्रशासनिक सेवा परिषद्, वित्त एवं बैंक सेवा परिषद्, अर्थ, सांख्यिकी तथा औद्योगिक प्रबन्ध परिषद्, आदि की स्थापना की जाय । चयन के लिये आधार 10+2 स्तर समुचित है । चयन के पश्चात आवश्यक अवधि तक शिक्षा व प्रशिक्षण व्यवस्था की जा सकती है ।

2. अन्य विशिष्टीकृत तथा विशिष्ट सेवाओं के लिये विश्वविद्यालयों में शिक्षण दिया जाना चाहिये । उदाहरणार्थ, शिक्षक प्रशिक्षण तथा कानूनी प्रशिक्षण के लिए विश्वविद्यालयों में ही व्यवस्था की जाय । परन्तु इनमें भी समानता लाने के लिये पाठ्यक्रम की एकरूपता तथा गुणावत्ता का ध्यान राष्ट्रीय स्तर पर विशेष रूप से रखा जाना चाहिये ।

3. समाज के अन्य लोगों के लिये जो फार्मल उच्च शिक्षा का लाभ सेवाकाल के दौरान अथवा अन्य समय में उठाना चाहते हैं, विश्वविद्यालयों के द्वार हमेशा के लिए खुले रहने चाहिये । वे लोग पत्राचार शिक्षा पद्धति से भी लाभ उठा सकते हैं । इस प्रकार उच्च शिक्षा सब के लिये उपलब्ध हो सकेगी ।

उच्च शिक्षा का राष्ट्रीयकरण

1. सम्पूर्ण देश में 10+2 फार्मूला लागू किया जाना चाहिए, ताकि उच्च शिक्षा में समान स्तर पर प्रवेश परीक्षा की जाय और चयन परीक्षा के आधार पर विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिया जाय ।

2. उच्च शिक्षा का तुरन्त राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिये और समस्त विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में समान पाठ्यक्रम लागू किये जायं । राष्ट्रीय स्तर पर गुणावत्ता तथा समानता बनाये रखने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है । इसके साथ-साथ यह भी ध्यान दिया जाय कि स्थानीय पर्यावरण, ज्ञान तथा समस्याओं की अनदेखी न हो ।

3. भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए राष्ट्रीय उच्च शिक्षा मॉडल तैयार किया जाय, क्योंकि ब्रिटिश उच्च शिक्षा मॉडल स्वतंत्र भारत के पर्यावरण, पारिस्थितिकी, संस्कृति तथा विभिन्नता में एकता के अनुकूल नहीं है । इसी कारण ब्रिटिश मॉडल के उच्च शिक्षा मंदिर भारतीयता तथा राष्ट्रीय एकता के लिए अमृत की अपेक्षा जहर वमन कर रहे हैं । अतः इसे बदलना राष्ट्रीय हित में होगा । चाहे संसाधन जुटाने में जितनी भी कठिनाईयाँ हों ।

शिक्षा का माध्यम

1. राष्ट्र भाषा हिन्दी को अखिल भारतीय स्तर पर उच्च शिक्षा का माध्यम घोषित किया जाना चाहिये । पुस्तकों तथा अन्य सामग्री हिन्दी में उपलब्ध करने की सारी जिम्मेदारी मानव संसाधन विकास मंत्रालय को लेनी चाहिये । इस सम्बन्ध में तुरन्त कदम उठाये जाने चाहिये ।

2. सारे देश में त्रिभाषा फार्मूला लागू करवाया जाय । राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता बनाये रखने के लिये संविधान के अनुकूल यह कार्यवाही अत्यावश्यक है ।

3. पूरे देश में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों द्वारा व्यावसायीकरण किया गया है जो धनार्जन के केन्द्र बन गये हैं । अतः इन संस्थाओं पर तुरन्त रोक लगाई जाय ताकि वे विद्या मंदिर के स्थान को पुनः ग्रहण कर सकें ।

अन्य सुझाव

1. विश्वविद्यालयों को शोधकार्य के साथ-साथ ग्रामीण विकास व प्रसार कार्यों से सम्बद्ध किया जाना चाहिये । प्रसार कार्यों के प्रारम्भ करने के लिए विभिन्न विभागों को चयनित कर समुचित संसाधन व्यवस्था की जानी चाहिये। शोध और प्रसार कार्यों में सामजस्य स्थापित करके ग्रामीण तथा शहरी विकास को अग्रगामी तथा द्रुतगामी बनाया जा सकता है ।

2. उच्च शिक्षा में भी नैतिक शिक्षा जैसे चरित्र निर्माण, विश्वास, कर्तव्य परायणता, राष्ट्रीय एकता, संस्कृति, आदि, विषयों पर चर्चाएं, सम्भाषण, लेख प्रतियोगिताएं, संगोष्ठियां, वाद-विवाद प्रतियोगिताएं, अनिवार्य रूप से संचालित की जानी चाहिये । विश्वविद्यालय तथा अन्तर विश्वविद्यालय स्तर पर इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।

उच्च शिक्षा की नई नीति संगोष्ठी: समापन

माननीय प्रो0एच0एच0ए0 बौड़ाई, कुलपति, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल) द्वारा दिये गये समापन भाषण का सारांश

उच्च शिक्षा की नई नीति पर आयोजित संगोष्ठी का समापन करते हुए माननीय कुलपति, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर ने कहा कि शिक्षकों को ध्यान रखाने चाहिये कि समाज उनको सम्मान क्यों कम देता है। क्योंकि शिक्षकों नें स्वयं अपना स्तर गिरा दिया है। समाज तथा छात्रों की दृष्टि में "टीचिंग चीटिंग" का रूप ले रहा है। लगभग 20 प्रतिशत शिक्षक कक्षाएं नहीं लेते हैं, जबकि उनके लिये समय सारिणी में कार्यवृत्त अंकित रहता है। इनके अतिरिक्त 20 प्रतिशत प्राध्यापक ऐसे भी हैं, जो अपने छात्र जीवन के बने हुए नोट्स कक्षाओं में लिखातें हैं। कुछ प्रतिशत अन्य शिक्षकों का है जो क्लास में ठीक से नहीं पढ़ाते हैं। अत: नई शिक्षा की चुनौती शिक्षकों के लिये चुनौती है। शिक्षकों को समाज के सुधार व विकास में भारी योगदान देना होगा। किन्तु आज शिक्षक अपने कार्य की अवहेलना करके स्वयं अपनी प्रतिष्ठा खो रहा है। कतिपय शिक्षक ऐसे भी हैं, जो अनुसंधान के नाम पर छात्रों को पढ़ाने से मुख मोड़ते हैं। यदि उनके शोध कार्यों को देखा जाय, तो उसमें भी बड़ी मात्रा में पुनरावृत्ति व कमियां मिलेंगी। हमारे लिये छात्रों को न पढ़ाना एक अभिशाप है। इस अभिशाप को समाप्त करने के लिये शिक्षक को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिये।

प्रो0 बौड़ाई ने कहा कि "अपने विचारों को प्रकाशित करो अथवा समाप्त हो जाओ" वाली कहावत सत्य है। उसे हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिये। वर्तमान युग में अनुसंधान का अत्यधिक महत्व है, किन्तु शोध कार्यों का प्रकाशन भी उच्च स्तर का होना चाहिये। अन्यथा शिक्षकों की प्रतिष्ठा समाज की दृष्टि में निम्न श्रेणी की ही मानी जायेगी। अत: शिक्षकों को अपनी प्रतिष्ठा उच्च श्रेणी की बनाने के लिये स्वयं त्याग-तपस्या करनी होगी। शोध कार्यों को विश्वविद्यालयों की आलमारियों में ही सीमित न रख कर उनका प्रचार

रेडियो तथा दूरदर्शन केन्द्रों के माध्यम से समाज के लिये उपयोगी बनाया जाना चाहिये ।

छात्रों के सम्बन्ध में उनका कहना है कि छात्रों को भी अपने भविष्य को उज्जवल बनाने के लिये अनुशासन, पठन कार्य तथा शोध कार्यों की ओर अभिरुचि दिखानी होगी । यदि छात्र जागरूक तथा विद्यार्जन करने वाला है, तो शिक्षकों को भी सतर्क रहना पड़ेगा । छात्रों का उत्तरदायित्व है कि वे अपने शिक्षकों से ज्ञानार्जन करने का पूर्ण प्रयास करें ।

संसाधनों की मांग तथा व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रो० बौड़ाई ने कहा कि विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को आवश्यक संसाधनों की पूर्ति के लिये सरकार पर निर्भर नहीं रहना चाहिये । धनाभाव की पूर्ति दान तथा चंदे से की जा सकती है । इस कार्य के लिए त्याग की भावना आवश्यक है । सारे देश में बड़े-बड़े उद्योगपतियों से याचना करके सरस्वती मन्दिरों की वित्तीय मांग पूरी की जा सकती है । उन्होंने आगे कहा कि हमको अपने उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम सदुपयोग करना है, तभी राज्य तथा समाज आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा । उनका कथन है कि हमको स्वर्ग अथवा पाताल से सहायता की मांग नहीं करनी है, बल्कि हमें अपने स्वावलम्बन तथा आत्म विश्वास पर निर्भर रहना चाहिये । उनका विश्वास है कि ईश्वर उनकी सहायता करते हैं जो अपनी स्वयं करते हैं । यह मुहावरा हमेशा आने वाले समय में भी सत्य होगा ।

अन्त में उन्होंने जोर देकर दुहराया कि नई शिक्षा की चुनौती, शिक्षकों के लिए, छात्रों के लिये तथा समाज के लोगों के लिए चुनौती है । इसे हमें क्रियात्मकरूप में स्वीकार करके राष्ट्रीय शिक्षा की नई नीति निर्माण करने में पूर्ण योगदान देना चाहिए । इसी में हमारा कल्याण है ।

उच्च शिक्षा का उद्देश्य तथा सुधार के सुझाव

-डॉ० आर०एन० गैरोला[x]

किसी राष्ट्र का वास्तविक विकास उस राष्ट्र की शिक्षा नीति पर निर्भर होता है। शिक्षा, वह माध्यम है, जो राष्ट्र को एक निश्चित दिशा में बढ़ने के लिये प्रोत्साहन देती है। राष्ट्रीय क्षमताओं का विकास मात्र भौतिक समृद्धि पर निर्भर नहीं होता, अपितु राष्ट्रीय क्षमताओं की सही अभिव्यक्ति राष्ट्र द्वारा अर्जित उपलब्धियों पर निर्भर करती है। राष्ट्र की अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास शिक्षा द्वारा होता है।

स्वतन्त्रता के बाद से ही शिक्षा विकास की ओर देश के प्रबुद्ध वर्ग एवं राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान खिचना स्वाभाविक था। "सन् 1948 में तत्कालीन प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी इस दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन की ओर जोर दिया था।"[1]

स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा नीति में सुधार के लिये कई प्रयास किये गये, किन्तु व्यावहारिक आधार पर शिक्षा नीति के निर्धारण के अभाव में शिक्षा नीति से वांछित लाभ प्राप्त नहीं हो पाये। अतः बदलती हुई परिस्थितियों में शिक्षा नीति का पुनर्विश्लेषण करना तथा शिक्षा पद्धति में समुचित सुधार करना एक आवश्यक कार्य कहा जा सकता है।

शिक्षा नीति में सुधार करते समय प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा दोनों में सुधार करना आवश्यक होगा, क्योंकि बुनियादी ढ़ाचे में परिवर्तन किये बिना उच्च शिक्षा में किया गया कोई परिवर्तन प्रभावशाली नहीं हो सकता। प्राथमिक शिक्षा जहां निशुल्क तथा अनिवार्य होनी चाहिये, वहां उच्च शिक्षा की कमियों को ध्यान में रखकर इसके उद्देश्यों की पुर्नसमीक्षा होनी चाहिये। इससे उच्च शिक्षा को परिस्थिति अनुकूल बनाने में सहायता मिलेगी।

---

[x] व्याख्या, राजनीति शास्त्र, श्रीनगर

उच्च शिक्षा का उद्देश्य

उच्च शिक्षा को किस प्रकार से प्रासंगिक बनाया जाय । यह अत्यधिक राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न है । किन्तु उच्च शिक्षा में किया गया किसी भी प्रकार का परिवर्तन तभी व्यवहारिक सिद्ध हो सकता है, जबकि उच्च शिक्षा का उद्देश्य सही प्रकार से निर्धारित किया जाय । जब तक उच्च शिक्षा के लक्ष्यों का समुचित रूप से निर्धारिण नहीं होता, तब तक उच्च शिक्षा नीति सफल नहीं हो सकती । स्वतन्त्रता के बाद उच्च शिक्षा नीति को सही दिशा इसलिये नहीं मिली कि उच्च शिक्षा के उद्देश्यों का सही प्रकार से निर्धारिण नहीं हो पाया था ।

"शिक्षा को प्रासंगिक व उद्देश्य परक बनाने के लिये लक्ष्यों की सही ढंग से व्याख्या होनी चाहिये ।"[2] उच्च शिक्षा का बहुमुखी उद्देश्य है । मेरी राय में उच्च शिक्षा के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

1. उत्कृष्ट बौद्धिक क्षमता का विकास

शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति का मानसिक विकास करना है । शिक्षा व्यक्ति की मूलभूत प्रतिभा को उजागर करके व्यक्ति को मानसिक दृष्टि से सबल बनाती है । शिक्षा का यह मूलभूत उद्देश्य उच्च शिक्षा के संदर्भ में भी लागू होता है । उच्च शिक्षा का उद्देश्य उच्च बौद्धिक क्षमताओं का विकास करना है, ताकि राष्ट्र को उत्कृष्ट बौद्धिक उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकें ।

2. जागरूकता

उच्च शिक्षा मात्र उत्कृष्ट मानसिक क्षमताओं का ही विकास नहीं करती, अपितु व्यक्ति की जागरूकता भी उत्पन्न करती है । उच्च शिक्षा का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उच्च ज्ञान तक सीमित रहने वाला दार्शनिक बनाना नहीं है, अपितु व्यक्ति को हर प्रकार से जागरूक बनाना है ताकि व्यक्ति अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति, समाज के प्रति, राज्य व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का भली भांति निर्वाह कर सके ।

3. चरित्र निर्माण

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को सच्चरित्र बनाना है । उच्च शिक्षा चरित्र निर्माण को आदर्श रूप में अभिव्यक्त करती है । उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का चरित्र आदर्श होना चाहिए, ताकि समाज के अन्य व्यक्ति उससे प्रेरणा ले सकें । "शिक्षा जगत में चरित्र निर्माण के मूल्यों के प्रतिस्थापन को उच्च प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिये ।"[3]

4. राष्ट्रीय चरित्र का विकास

उच्च शिक्षा के अन्तर्गत चरित्र के विकास की ओर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिये । किन्तु चरित्र निर्माण का अभिप्राय उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को विशेष वर्ग (अभिजनवर्ग) का सदस्य बनाना नहीं है, अपितु राष्ट्रीय चरित्र का विकास करना है । उच्च शिक्षा ऐसी नहीं होनी चाहिये कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अंहवादी बन जाये और वह सामान्य व्यक्तियों से उच्च समझने लगे । वरन उच्च शिक्षा ऐसी हो जिससे राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण व विकास हो सके । इसे राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास ही समझा जाना चाहिये कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति विदेशों में जीवन यापन करना चाहते हैं । वे विदेशों में निवास करना अथवा नौकरी करना अपनी उच्च शिक्षा की सफलता मानते हैं । उच्च शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र प्रेम तथा देश प्रेम की भावना को बढ़ाना होना चाहिये । जब उच्च शिक्षा प्राप्त युवा राष्ट्र सेवा तथा राष्ट्र विकास के लिये अपने को समर्पित करने वाला तथा राष्ट्र सेवा में गौरव की अनुभूति करने वाला हो जाय, तब उच्च शिक्षा को सफलता की ओर अग्रसर कहा जा सकेगा । उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय चरित्र के विकास को प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिये ।

5. आत्मनिर्भरता का लक्ष्य

उच्च शिक्षा को बेकारी तथा बेरोजगारी को जन्म देने वाला नहीं होना चाहिये । उच्च शिक्षा ऐसी हो कि उच्च शिक्षा प्राप्त युवा आत्म निर्भरता प्राप्त कर सके । आज कल की विश्वविद्यालय शिक्षा आत्म निर्भरता देने वाली नहीं है, जिसके कारण छात्र जीवन से ही विश्वविद्यालय के युवा

भविष्य के प्रति निराशा तथा भय की भावना से ग्रसित होकर असामाजिक गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं । यह मनोवृत्ति तभी समाप्त हो सकती है, जबकि उच्च शिक्षा आत्मनिर्भरता की दिशा प्रदान करने में समर्थ हो सके ।

6. व्यक्तित्व का विकास

उच्च शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है । उच्च शिक्षा ऐसी हो कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में उत्कृष्ट गुणों का विकास हो सके । उच्च शिक्षा द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व में साहस, धैर्य, विवेक, निर्भयता, तथा उत्साह आदि गुणों का विकास होना चाहिये । गांधी जी का कहना था कि "शिक्षा द्वारा, मेरा अभिप्राय बच्चों तथा व्यक्ति के मस्तिष्क तथा आत्मा का सम्पूर्ण विकास है ।"[4]

7. राष्ट्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना

उच्च शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य राष्ट्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना होना चाहिये । उच्च शिक्षण संस्थाओं का वातावरण इस प्रकार होना चाहिये ताकि देश को उच्च प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति प्राप्त हो सकें । देश को उच्च स्तरीय प्रतिभा सम्पन्न वैज्ञानिकों, तकनीशियनों तथा विद्वानों की आवश्यकता है जो विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय विकास को अग्रगामी कर सके । उच्च शिक्षा इस राष्ट्रीय आवश्य कता को पूरा कर सकती है । उच्च शिक्षा का निर्धारण करते समय इस राष्ट्रीय आवश्यकता को विस्मृत नहीं किया जाना चाहिये । वर्तमान शिक्षा पद्धति की सबसे बड़ी विफलता, हमारी सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा न कर पाना है । स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक जीवन में कई बुराइयां पैदा हुई हैं । शिक्षा नीति में इन बुराइयों की अनदेखी नहीं की जा सकती । उच्च शिक्षा अब तक उच्च सामाजिक मूल्यों के प्रतिस्थापन में पूर्णतः विफल रही है । उच्च शिक्षा सामाजिक उत्कृष्टता का प्रतीक तो बनी है किन्तु उत्कृष्ट सामाजिक मान्यताओं के सृजन में पूर्णतः विफल रही है । सामाजिक बुराइयां, जैसे- दहेज प्रथा कहीं न कहीं पर उच्च शिक्षा से जुड़ी हुई है । उच्च शिक्षा प्राप्त डाक्टर, इंजीनियरों का विवाह आदि में मूल्य निर्धारण होता है । उच्च शिक्षा प्राप्त युवा ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर सेवा करना पसन्द नहीं करते । अतः "राष्ट्रीय शिक्षा ऐसी हो

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B, Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No. 3.3.H.0
Date 18.9.85

जिसके द्वारा राष्ट्र की अन्य समस्याओं का समाधान हो सके ।"[5]

8. राष्ट्र का सर्वांगीण विकास

उच्च शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक मान्यताओं को संरक्षण प्रदान करना है । "शिक्षा प्रणाली के सामने दो बुनियादी प्रश्न ये हैं- पहला, क्या यह भारत के धर्म निरपेक्षता, लोकतन्त्र तथा समाजवादी समाज के आदर्शों को प्राप्त करने के लिये सक्षम है । दूसरा, क्या यह हमारे देश के लोगों में सत्य और अहिंसा की जागृत करती है ।"[6] अत: शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि इन राष्ट्रीय मूल्यों को संरक्षण मिल सके । उच्च शिक्षा समान रूप से योग्यता और प्रतिभा के आधार पर समाज के सबसे निचले तथा कमजोर वर्ग के लोगों को भी प्राप्त होनी चाहिये । "शिक्षा प्रणाली को सामाजिक तनावों को बढ़ावा देने के स्थान पर उनका निराकरण करना चाहिये ।"[7] गांधी जी का कहना था कि शिक्षा में धर्म तथा नैतिकता के आदेशों को स्थान दिया जाना चाहिये । उनकी भावना के अनुसार शिक्षण में धर्म और नीति के प्रयोग की कोठारी आयोग ने अपने प्रतिवेदन में कहा- "शिक्षा हेतु ऐसा सचेतन एवं व्यवस्थित प्रयास किया जावे जिससे सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की तथा जहां तक हो सके आवश्यकता होने पर महान धर्मों की नैतिक शिक्षा भी हमारी शिक्षा पद्धति में समाविष्ट हो सके ।"[8] अत: "उच्च शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि मानवीय व्यक्तित्व के गुणों का सन्तुलित विकास हो सके ।"[9]

उच्च शिक्षा में सुधार तथा सरकारी आयोग

"यद्यपि सरकारी प्राथमिकता की सूची में उच्च शिक्षा का स्थान बहुत नीचे है, फिर भी ऐसा नहीं है कि सरकार की तरफ से कोई कदम नहीं उठाये गये हैं ।"[10] गत पच्चीस वर्षों में केन्द्र सरकार ने तीन उच्च स्तरीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की । पहला, राधाकृष्णन आयोग, दूसरा, सेन आयोग और तीसरा, कोठारी आयोग है । इन तीनों आयोगों में देश के जाने माने शिक्षा विद् तथा बुद्धिजीवियों के अतिरिक्त विदेशों से भी विशिष्ट विद्वानों को इनमें शामिल किया गया था । प्रत्येक आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । किन्तु किसी भी रिपोर्ट को पूरी तरह अमल में नहीं लाया गया ।

"वस्तुत: इन रिपोर्टों के केवल वे ही अंश मंजूर और लागू किये गये, जो शिक्षकों के वेतन, छात्रों के पाठ्यक्रम और विश्वविद्यालय की आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बन्धित थे ।"[11] उन सभी बातों को, जो उच्च शिक्षा को अन्दर ही अन्दर खोखला बना रहे हैं, किसी आयोग ने पूरी तरह उजागर नहीं किया और जब किया भी तो सरकार ने उन पर पूरी तरह अमल नहीं किया । जिसके परिणाम स्वरूप उच्च शिक्षा का स्तर गिरता चला गया । अब स्थिति यह है कि उच्च शिक्षा साधारण तौर पर मखोल बन कर रह गयी है । देश के उच्च अध्ययन संस्थाओं और विश्वविद्यालयों का स्तर निरन्तर गिर रहा है । आये दिन विश्वविद्यालयों में हड़तालों तथा दंगों के कारण अध्ययन ठप्प रहता है । विशेष अवसरों पर विश्वविद्यालयों में पुलिस तथा सेना तैनात करनी पड़ती है । "इससे स्पष्ट है कि तीन शिक्षा आयोगों की रिपोर्टों तथा सरकार द्वारा उठाये गये कदमों के बाद भी देश में उच्च शिक्षा का सन्तोषजनक ढंग से विस्तार नहीं हुआ है ।"[12] केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने राष्ट्रीय बहस के लिये चैलेंज आफ ऐजुकेशन", शीर्षक से, जो दस्तावेज तैयार किया है, इससे आशा उत्पन्न हुई है कि सरकार उच्च शिक्षा के संकट से परिचित है और वह उच्च शिक्षा को सुधारने के लिये व्यवहारिक कदम उठाना चाहती है । वस्तुत: अब अधिक दिनों तक शिक्षा सुधार नीति को टाला नहीं जा सकता । क्योंकि शिक्षा में सुधार द्वारा ही इससे जुड़ी हुई समस्याओं का समाधान किया जा सकता है ।

व्यावहारिक सुझाव

उच्च शिक्षा प्रणाली में आमूल सुधार किया जाना आवश्यक है । इसमें सभी को समान अवसर दिया जाना चाहिये ताकि यह सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढ़ल सके । किन्तु समानता ऐसी नहीं होनी चाहिये कि शिक्षा में सस्तापन आ जाये । समानता का कोई एक निश्चित् स्तर होना चाहिये । "प्राथमिक शिक्षा स्तर पर तो समानता की बात ठीक है लेकिन उच्च स्तर पर गुणवत्ता और प्रासंगिकता पर जोर दिया जाना चाहिये ।"[13] ज्ञान प्राप्ति के उच्च स्तरों पर समानता व गुणवत्ता दोनों को एक पलड़े पर नहीं तोला जा सकता। कोई एक ऐसा स्तर होना चाहिये, जहां इन दोनों में अन्तर किया जा सके ।

"स्नातकोत्तर शिक्षा, उच्च अनुसंधान कार्य का अवसर केवल प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को मिलना चाहिये । इन पाठ्यक्रमों में पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों के लिये उचित प्राविधान होना चाहिये ।"[14] उच्च शिक्षा में गुणावत्ता को विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये । समानता और गुणावत्ता में सन्तुलन रखा जाना चाहिये । किन्तु इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु चार बातों पर अविलम्ब ध्यान देना होगा ।

आवश्यकता के अनुरूप वित्तीय सहायता, विशेष वर्गों में असन्तुलन दूर करने के लिये कानूनी उपाय, वर्तमान प्रक्रियाओं तथा व्यवस्थाओं को लचीला बनाना तथा वैकल्पिक प्रणाली की व्यवस्था करना । इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये देश के विभिन्न आर्थिक स्त्रोतों का विकास करना पड़ेगा ।

उच्च शिक्षा में ग्रामीण क्षेत्र व पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों के प्रवेश का समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिये । उच्च शिक्षा में गुणावत्ता व प्रासंगिकता तभी आ सकती है, जब समुचित वाह्य नियन्त्रण की व्यवस्था की जाय । उच्च शिक्षा के हर महत्वपूर्ण चरण पर प्रवेश परीक्षा होनी चाहिये ।

उच्च शिक्षा के समाज में तीन महत्वपूर्ण पहलू हैं । जिनको शिक्षा नीति निर्धारण करते समय अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिये । प्रथम, वर्तमान शिक्षा प्रणाली मैकाले द्वारा प्रारम्भ की गयी है । यह शिक्षा प्रणाली पाश्चात्य ढंग की है । यह ब्रिटिश शासन काल में उपयोगी हो सकती थी किन्तु वर्तमान भारत की परिस्थितियों के अनुरूप नहीं है । द्वितीय, उच्च शिक्षा तथा हमारी सामाजिक आवश्यकताओं के बीच उचित तालमेल होना चाहिये । अभी तक जो शिक्षा दी जाती रही है और हमारे समाज की विकास सम्बन्धी जो समस्यायें हैं, उनके बीच में कोई गहरा सम्बन्ध नहीं हैं तथा तृतीय, उच्च शिक्षा में भाषा के प्रश्न पर अवश्य विचार किया जाना चाहिये । अब तक जितने भी शिक्षा आयोग बने सबने इस प्रश्न की अवहेलना की है । वस्तुत: जब तक उच्च शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होगी, तब तक उच्च शिक्षा अपने समाज में कहीं भी उन्मुक्त, स्वछन्द, सृजनशील और अपने समाज का अभिन्न अंग नहीं बन सकेगी ।

उच्च शिक्षा को व्यवहारिक बनाने के लिये हमें निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना होगा-

1. उच्च शिक्षा को महत्वपूर्ण बनाया जाय । उच्च शिक्षा का द्वार सबके लिये न खोला जाय । केवल प्रतिभाशाली छात्रों को ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहन दिया जाय ।
2. प्राइवेट परीक्षा द्वारा उच्च शिक्षा की उपाधि हासिल करने की परम्परा बन्द कर दी जाय ।
3. धर्म निरपेक्षकता, समाजवादी व लोकतान्त्रित संवैधानिक मान्यताओं को उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया जाये ।
4. महिलाओं, कमजोर वर्ग के लोगों तथा हरिजनों को प्रतिभा के आधार पर उच्च शिक्षा में पूर्ण स्थान दिया जाय ।
5. कमजोर वर्गों तथा निर्धन वर्ग के प्रतिभाशाली छात्रों को सरकारी सहायता प्रदान करके उच्च शिक्षा प्रदान की जाये ।
6. उच्च शिक्षा के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय आन्दोलन, स्वतन्त्रता का इतिहास, राष्ट्रीय संस्कृति, आदि विषयों को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया जाये ।
7. उच्च शिक्षा के अन्तर्गत मानसिक विकास के साथ ही साथ शारीरिक विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये । व्यायाम तथा खेलों को भी उच्च शिक्षा संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों में संरक्षण दिया जाना चाहिये ।
8. उच्च शिक्षा संस्थाओं का वातावरण तभी सुधार सकता है जब कि उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्यापकों का चयन निष्पक्ष होकर किया जाय । योग्य तथा कुशल व्यक्तियों को ही उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्यापक के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिये ।
9. उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन करने वाले अध्यापकों की स्थिति में वांछनीय सुधार किया जाना भी आवश्यक है । अध्यापक तभी सही रूप से अध्यापन कर सकता है जबकि उसे आवास, चिकित्सा तथा पर्याप्त वेतन की सुविधा उपलब्ध हो । "अध्यापक अपनी आर्थिक स्थिति और असंभव दिनचर्या से इस कदर पिटे हुये हैं और शिक्षा के अधिकारियों के

सामने इतने अशक्त हैं कि उनसे शिक्षा की स्थिति पर कुछ नया सोचने और फिर उस आधार पर हस्तक्षेप की आशा करना कठिन है ।"[15] किन्तु यदि अध्यापकों की स्थिति में सुधार कर लिया जाता है तो शिक्षा प्रणाली में सुधार व्यावहारिक सिद्ध हो सकता है । विश्वविद्यालय चोटी की शिक्षण संस्था है । गांधी जी का विश्वास था कि "विश्वविद्यालय के लिये ठीक-ठीक वातावरण होना चाहिये । इसकी नींव मजबूत होनी चाहिये ।"[16] उच्च शिक्षा का समुचित विकास विश्वविद्यालयों के वातावरण पर निर्भर करता है । विश्वविद्यालय के कर्मचारियों तथा अध्यापकों में अपने कर्तव्यों के प्रति समर्पण की भावना होनी चाहिये । "विश्वविद्यालय सिर्फ पैसों से या बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी कर देने से नहीं बनते । उनके पीछे जनता की जाग्रत राय होना आवश्यक है । इन्हें स्थापित करने वालों में पूर्ण दूरदर्शिता होनी चाहिये ।"[17]

यदि उच्च शिक्षा नीति के निर्धारण में उच्च शिक्षा के उपरोक्त उद्देश्यों तथा सुझावों को ध्यान में रखा जाय तो निस्संदेह उच्च शिक्षा भारत की राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी और प्रगतिशील विश्व के साथ भारत की प्रगति को सही दिशा प्रदान करने में सक्षम हो सकेगी ।

संदर्भ

1. जे0पी0 नायक, ऐज्युकेशनल कांफ्लिक्ट इन 1948, पृ0- 41
2. डॉ0 आर0एस0 मिश्र, शिक्षा में आमूल सुधार जरूरी, नव भारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1985
3. जग्गू नौड़ियाल, शिक्षा की मुख्य आवश्यकतायें और महत्वपूर्ण सुझाव, पृ0- 3
4. महात्मा गांधी, हरिजन, जुलाई 31, 1937
5. डॉ0 प्रभात कुमार भट्टाचार्य, गांधी दर्शन, पृ0-249
6. राजीव गांधी, शिक्षा प्रणाली का नया स्वरूप, पृ0-9
7. तदैव, पृ0-9
8. कोठारी कमीशन, पृ0 206
9. आर0पी0 धिमन, गांधीयन फिलासफी, पृ0-163
10. अखिलेश्वर झा, उच्च शिक्षा का वास्तविक संकट, नव भारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1985
11. तदैव
12. तदैव
13. प्रो0 एस0 मंजूर आलम, शिक्षा में आमूल सुधार जरूरी, नव भारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1985
14. डॉ0 बी0बी0 सुन्दरलेन, नव भारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1985
15. कृष्ण कुमार, गांधी मार्ग, अक्टूबर, 1982, पृ0-55
16. डॉ0 प्रभात कुमार भट्टाचार्य, गांधी दर्शन, पृ0-248
17. तदैव, पृ0-248

उच्च शिक्षा नीति से अपेक्षाएं: व्यावहारिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य

- डॉ0 नारायण सिंह बिष्ट[x]

उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे परिष्कृत व्यक्तित्व का निर्माण करना है, जो किसी राष्ट्रीय जीवन की गुणवत्ता, प्रासंगिकता, वातावरण, परम्परा, संस्कृति तथा मानवीय मूल्यों का व्यापक ज्ञान प्राप्त करके भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं पर विजय प्राप्त करने की क्षमता सम्पन्न जनशक्ति का स्वरूप धारण करता है । वास्तविक जगत में कृषि, उद्योग, प्रशासन तथा अन्य क्षेत्रों के लिये सक्षम तथा प्रावैधिक जनशक्ति उच्च शिक्षा से ही प्राप्त की जा सकती है । वर्तमान, भौतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के युग में उच्च शिक्षा का महत्व, उद्देश्य तथा प्रासंगिकता का विश्लेषण नितान्त आवश्यक परिवर्तन की दृष्टि से किया जाना चाहिये, जो समय की मांग के अनुरूप हो । मानव संसाधान निर्माण की प्रक्रिया में उच्च शिक्षा का सर्वोपरि स्थान है । भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में गतिशीलता तथा नव प्रवर्तन लाने के लिये उच्च शिक्षा की नई नीति की आवश्यकता है ।

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश शासन की देन है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय जीवन में सफेद पोश सामन्ती प्रवृत्ति के लोगों का बाहुल्य तो हुआ, परन्तु कला- कौशल सम्पन्न कर्मकरों की कमी आयी है । विश्वविद्यालय उपाधिधारक युवक-युवतियां स्वरोजगार/व्यवसाय की अपेक्षा सफेद पोश क्लर्क बनाना अधिक पसंद करते हैं । क्योंकि विश्वविद्यालयों में युवक-युवतियां व्यावहारिक जीवन से अलग-थलग काल्पनिक जीवन की शिक्षा ग्रहण करते हैं । भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा एक और शिक्षित बेरोजगारों[1] की सेना में निरन्तर वृद्धि की जा रही है, दूसरी ओर दुलभ संसाधनों का दुरूपयोग हो रहा है । उच्च शिक्षा में प्रासंगिकता का अभाव अंग्रेजी शासन काल से चला आ रहा है । परन्तु गुणवत्ता का ह्रास भी द्रुतगति से होता

---

[x]प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (अर्थशास्त्र), गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर ।

---

1. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, (अगस्त-1985) शिक्षा की चुनौती: नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य", पद 2.52 पृ0-21

दिखाई दे रहा है । उच्च शिक्षा प्रणाली के दोषों का उल्लेख शिक्षा आयोग[2] की रिपोर्ट (1964-65) द्वारा इस प्रकार किया गया । "अधिकांश कला के उदासीन शिक्षित स्नातक होते हैं, जिनमें से अधिकतर तो बेरोजगार रह जाते हैं अथवा रोजगार के योग्य होते ही नहीं । यही लोग सामाजिक तनाव पैदा कर सकते हैं तथा आर्थिक विकास में बाधा डाल सकते हैं । उपयुक्त पैमाने पर उपलब्ध कराई गई उचित शिक्षा ही साधन है जो राष्ट्रीय विकास में सहायक हो सकती है ।" अभिप्राय यह है कि शिक्षा आयोग ने उच्च शिक्षा नीति परिवर्तन पर बल दिया था । परन्तु आज तक इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । फलस्वरूप भारतीय उच्च शिक्षा के दो परिणाम स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं-

प्रथम, भारतीय विश्वविद्यालयों तथा उच्च स्तरीय तकनीकी संस्थानों (आई0आई0टी0) द्वारा उच्च स्तर के विद्वान -इंजीनियर, तकनीशियन, डाक्टर, प्रबन्धक तथा कार्मिक तैयार किये गये हैं, जो हमारी कृषि, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के आधार स्तम्भ माने जा सकते हैं । किन्तु प्रासंगिकता की कमी तथा अर्थव्यवस्था में अवशोषण शक्ति की न्यूनता तथा अक्षमता के कारण बहुत बड़ी संख्या में प्रतिभा पलायन को प्रोत्साहन मिला, जिसका लाभ विकसित राष्ट्रों - अमेरिका, ब्रिटेन, कनाड़ा, आदि ने उठाया । इन राष्ट्रों को परिस्कृत तथा प्रशिक्षित उच्च कोटी के वैज्ञानिक, इंजीनियर, डाक्टर तथा तकनीशियन बिना पूँजी विनियोग किये ही प्राप्त हो गये । अतः भारतीय मानव संसाधन पर किया गया पूँजी विनियोग हमारे दुर्लभ साधनों का क्षरण ही करता रहा, क्योंकि हम उन प्रतिभाओं को अपने उद्योग-धंधों तथा व्यवसायों में रोजगार देने में असमर्थ रहे । किन्तु इन प्रतिभा सम्पन्न युवकों में भी राष्ट्रीय तथा सामाजिक दायित्वों को निभाने की प्रवृत्ति तथा क्षमता की कमी पाई गई है ।

द्वितीय, उच्च कोटी के प्रबुद्ध युवकों की तुलना में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे युवक-युवतियां उपाधीधारी होती हैं जो अधिकतर कला तथा सामाजिक विज्ञानों में तृतीय श्रेणी के स्नातक होते हैं । वे अल्पपुस्तकीय ज्ञान, कम क्षमता,

---

2. उक्त, पद 1.15, पृ0-5

अल्पभाषा ज्ञान, सामंत तथा न्यून सम्प्रेषण क्षमता तथा संकीर्ण विचारधारा के होते हैं । उनमें सामाजिक तथा राष्ट्रीय कर्तव्यों को निभाने की प्रवृत्ति का अभाव रहता है ।

उच्च शिक्षा की इन समस्याओं का निराकरण करने के लिये उच्च शिक्षा की अलग से नई नीति बनाने की आवश्यकता पुनः एक बार सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्तर पर महसूस की जा रही है । जब तक शिक्षा नीति नियोजक तथा प्रशासन उच्च शिक्षा को भावी विकास के लिये एक महत्वपूर्ण विनियोजन नहीं स्वीकार करते, तब तक इस कार्य के लिये मानव संसाधन तथा वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं हो सकेंगे । उच्च स्तर पर तकनीकी, वैज्ञानिक, आर्थिक तथा सामाजिक लक्ष्यों को राष्ट्रीय विकास की प्रकृति तथा दिशा के अनुरूप बनाना आवश्यक हो जाता है । ये सभी तात्विक परिवर्तन लाना एक मात्र नीति नियोजकों के सामर्थ्य से ही नहीं होगा, अपितु इसके लिए समस्त जन सेवकों तथा प्रतिनिधियों में उच्च शिक्षा के मूल्यों के प्रति दृढ़ता तथा संकल्प भी होना चाहिये । इसमें सम्पूर्ण राष्ट्रीय सहमति तथा सम्मति द्वारा उच्च शिक्षा के उद्देश्यों को स्वीकृति मिलनी ही चाहिये, अन्यथा विश्वविद्यालयों तथा उच्च संस्थानों में गुणवत्ता, समानता तथा प्रासंगिकता कोरी कल्पना मात्र होगी ।

प्रस्तुत लेख में कतिपय समस्याओं पर विचार करके उच्च शिक्षा की नई नीति निर्धारित करने के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं । प्रमुखतः ये समस्यायें हैं- क्या उच्च शिक्षा के द्वार सभी के लिये खुले रहने चाहिये ? उच्च शिक्षा में गुणवत्ता बनाये रखने तथा उसे बढ़ावा देने के लिये क्या प्रयास किये जाने चाहिये ? क्या इस संदर्भ में उच्च शिक्षा के लिये संसाधन पर्याप्त है ? यदि नहीं तो क्या कदम उठाये जाने चाहिये ? क्या स्नातक उपाधि को रोजगार निरपेक्ष किया जाय ? उच्च शिक्षा का माध्यम राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रखने के लिये क्या होना चाहिये ?

॥ ॥

भारतीय परम्परा तथा सांस्कृतिक परिवेश में देखने से ज्ञात होता है कि देश में उच्च शिक्षा विशिष्ठता तथा योग्यता के आधार पर ही आश्रमों तथा गुरुकुलों में होती थी । छात्रों का प्रवेश योग्यता के आधार पर होना

विष्णुगुप्त का तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेश से मिलता है, जो ऐतिहासिक तथ्य है । इससे पूर्व महाभारत तथा रामायण युगीन गुरुकुलों की प्रथाओं से स्पष्ट है कि विषय अथवा किसी कला का विशेष ज्ञान छात्र की व्यक्तिगत योग्यता, रुचि तथा प्रवृत्ति की परीक्षा लेकर दिया जाता था । उदाहरणार्थ, अर्जुन को धानुर्विद्या, भीम को गदा प्रहार तथा युधिष्ठिर को राजतंत्र विद्या का ज्ञान विशिष्टता प्राप्त करने के लिए प्रवृत्ति, योग्यता, गुणग्राहयता तथा रुचि के आधार पर दिया गया था । इस प्रकार के अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा देने की प्रथा का प्रतिपादन करते हैं ।

आधुनिक भारत के प्रणेता तथा प्रबुद्धवर्ग उच्च शिक्षा में प्रवेश के विषय पर दो विचारधाराओं में विभाक्त हैं । प्रथम, वे हैं जो इस विचार के हैं कि भारतीय संविधान के अनुसार उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक भारतीय नागरिक को है । विश्वविद्यालयों में प्रवेश पर लगाये गये किसी प्रकार का प्रतिबन्ध मूल अधिकारों का हनन मात्र माना जायेगा । संवैधानिक अधिकार से वंचित करने का कोई भी प्रयास असंवैधानिक तथा अन्याय पूर्ण होगा । अत: उच्च शिक्षा के द्वार सभी के लिये खुले रहने चाहिये ।

द्वितीय वर्ग की विचारधारा है कि विश्वविद्यालयों में प्रवेश पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होने के कारण लगातार छात्रों की भीड़ बढ़ती जा रही है । उच्च शिक्षा प्रणाली की इस कमी के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करने के नाम पर ऐसे छात्र पहुँच जाते हैं जो नितान्त अयोग्य होते हैं और मात्र राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति के लिए प्रवेश पा जाते हैं, जो राजनीतिक दबावों के कारण होता है ।[3] स्नातक स्तर पर भीड़ कम करने तथा विश्वविद्यालयीय शिक्षा में गुणशीलता में वृद्धि लाने के लिए सुधार नितान्त आवश्यक है । ऐसा सामान्य रूप से राष्ट्रीय स्तर पर महसूस किया जा रहा है ।

इन दोनों विचारधाराओं को दृष्टिगत करते हुए, स्पष्टतया यह राय उचित होगी कि संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरूप किसी युवक-युवती को उच्च

---

3. वार्ता, जनसत्ता, 10 जनवरी, 1986, पृ0-3, "ऊँची शिक्षा सिर्फ योग्य छात्रों को ही मिले ।"

शिक्षा लेने से रोका नहीं जाना चाहिये । अपितु योग्यता तथा प्रवृत्ति के आधार पर शिक्षा के अवसरों का वर्गीकरण कर प्रत्येक को समान अवसर दिया जाना चाहिये । अभिप्राय यह है कि विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर प्रवेश के लिये चयन परीक्षा की जानी चाहिये । छात्र को योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जाना चाहिये । विषयानुसार परीक्षा के आधार पर एक निर्धारित मानदण्ड प्राप्त करने पर प्रवेश दिया जना चाहिये । स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम पूरे राष्ट्र में समान होना चाहिये और उसी के आधार पर प्रवेश परीक्षा विश्वविद्यालयों द्वारा ली जानी चाहिये । छात्रों को विषय समूह लेने की पूरी छूट होनी चाहिये । साथ ही सामाजिक, व्यावहारिक तथा समय की मांग के अनुसार विषय समूह बनाये तथा स्वीकृत किये जाने चाहिये ।

योग्यता का आधार स्वीकार किये जाने पर छात्रों की अनावश्यक भीड़ में निश्चित रूप से कमी आयेगी । मात्र वे ही छात्र प्रवेश पायेंगे जो अपनी रुचि तथा प्रवृत्ति के अनुसार स्नातक स्तर पर अध्ययन करना चाहते हैं । इस प्रकार छात्रों की छंटनी ही नहीं अपितु राष्ट्रीय दुर्लभ साधनों के दुरुपयोग पर रोक लगेंगी । छात्रों में गुणवत्ता उत्पन्न करने के लिये उच्च शिक्षा में तृतीय श्रेणी समाप्त कर दी जाय । क्योंकि तृतीय श्रेणी के ही सर्वाधिक युवक बेरोजगार पाये गये हैं । विश्वविद्यालयों में आन्तरिक मूल्यांकन पद्धति तकनीकी संस्थानों (आई0आई0टी0) की भांति प्रारम्भ की जानी चाहिये । छात्रों की उपस्थिति तथा अनुशासन पर विशेष अंक दिये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिये । अकारण अनुपस्थित रहने वाले छात्रों को लगातार एक सप्ताह तक अनुपस्थित रहने पर विश्वविद्यालय से हटाने की व्यवस्था होनी चाहिये । अनुपस्थिति के लिये ऋणांकों की व्यवस्था भी की जानी चाहिये ।

स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई के कार्य को अनुसंधान कार्य पद्धति से सम्बद्ध किया जाना चाहिये । अर्थात जो छात्र किसी विषय में विशिष्ठता प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें भी गुणवत्ता तथा विषय ज्ञान के आधार पर स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाई तथा अनुसंधान कार्य विश्वविद्यालयों तथा उन सम्बद्ध महाविद्यालयों में स्वीकृत किया जाना चाहिए, जिनमें शोध सामग्री के रूप में पुस्तकें, शोध पत्रिकायें, आवश्यक प्रयोगशालायें, अन्य सहायक

सामग्री व सुयोग्य पर्यवेक्षक उपलब्ध हों । अनुसंधान कार्य के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर प्रत्येक विषय के लिए शोध सामग्री तथा पुस्तकालयों की समृद्ध तथा आवश्यकतानुसार आधुनिकीकरण करने के लिए प्राथमिकता के आधार पर संसाधनों की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

॥2॥

वर्तमान समय में 140 विश्वविद्यालय तथा 5246 महाविद्यालय राष्ट्र में अयोग्य युवक तथा बेरोजगारी विस्फोटक उत्पन्न कर रहे हैं । इनकी संख्या बढ़ाने की अपेक्षा शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए इन विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को पुर्नगठित किया जाना चाहिए । जो महाविद्यालय साधनहीन, शिक्षक विहीन तथा थोड़ी छात्र संख्या पर चल रहे हैं, उन्हें बन्द कर देना चाहिये । पुनर्गठित संस्थाओं में सम्पन्न पुस्तकालयों, शिक्षकों के लिए आवास व्यवस्था तथा अनुसंधान की समुचित व्यवस्था की जाय, ताकि ये संस्थायें ज्ञान व अनुसंधान के केन्द्र बन सकें तथा छात्रों की गुणवत्ता में सुधार हो सके ।

अनुसंधान कार्य मौलिक तथा व्यावहारिक होने चाहिये । क्षेत्रीय विकास समस्याओं को सुलझाने के लिये विशेषरूप से प्रासंगिक शोधकार्यों की नितान्त आवश्यकता है । राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय सरकार द्वारा बड़ी संख्या में शोध केन्द्रों की स्वतन्त्र रूप से ॥अनुसंधान शालाओं/संस्थानों के रूप में ॥ स्थापना की गई है जो मात्र प्रयोगशालाओं तक सीमित हैं । इनकी विश्वविद्यालयों की उच्च शिक्षा में विशिष्ठता प्रदान करने में उपादेयता, व्यावहारिक तथा क्रियात्मक उपयोगिता नगण्य है । इन संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों में किये गये कार्यों तथा वास्तविक विकास समस्याओं के बीच एक अन्तराल है, जिसे समाप्त किया जाना चाहिये ।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं तथा विश्वविद्यालयों के बीच इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किये जायं कि शोध कार्यों में एक दूसरे के परिपूरक बन सकें । शोध कार्यों के परिणामों को उत्पादन इकाई की उत्पादकता बढ़ाने तथा विकास की समस्याओं को सुलझाने में लगाया जाना चाहिये । अभिप्राय यह है कि अनुसंधान कार्यों की प्राथमिकता उत्पादन बर्धन, नव प्रवर्तन तथा नव प्राविधिकारक होनी चाहिये । राष्ट्रीय प्रासंगिकता के अनुरूप तकनीकी विकास, अनुसंधान व

विकास तथा आर्थिक विकास में सहचार्यता तथा कोऑर्डिनेशन होना चाहिये, ताकि वर्तमान युग की वैज्ञानिक, तकनीकी तथा प्रबन्धकीय दक्षता प्राप्त मानव संसाधनों के लिए भारत का विकसित राष्ट्रों पर आवश्यकता से अधिक परावलम्बन न रहे ।

इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय प्रश्न उठता है कि राष्ट्रीय संस्थाओं व विश्वविद्यालयों द्वारा उत्पादित उच्च श्रेणी के वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, डाक्टरों, इंजीनियरों, आदि का विकसित देशों को पलायन कैसे रोका जाय । घरेलू व्यय पर विदेशी तरक्की को रोकना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं, अपितु राष्ट्रीय दुर्लभ साधनों के दुरूपयोग को रोकना भी महत्वपूर्ण है । अकेले नासा में ही 17 प्रतिशत भारतीय वैज्ञानिक तथा तकनीकी विशेषज्ञ लगे हैं ।[4] अत: सुझाव है कि पलायन की प्रवृत्ति को रोकने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मानव संसाधन नियोजन किया जाना चाहिये, जिसमें अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में मानव संसाधन की मांग के अनुरूप प्रशिक्षित तथा परिष्कृत विशेषज्ञों की पूर्ति व्यवस्था करनी चाहिये । शिक्षण संस्थाओं, उद्योगों, व्यापारिक संस्थाओं, सरकारी क्षेत्रों तथा सरकार के बीच लगातार संवाद तथा सम्प्रेषण बना रहना चाहिये, ताकि आवश्यकतानुसार उचित प्रशिक्षण देकर विशेषज्ञों तथा अन्य मानवीय शक्ति निर्माण किया जा सके । पूर्ति पक्ष की गुणात्मकता तथा प्रासंगिकता पर मांग के अनुसार ध्यान देना आवश्यक है । मांग करने वाले विभागों/क्षेत्रों के साथ पूर्तिकारक संस्थानों/विश्वविद्यालयों के बीच समन्वय स्थापित करने की नितान्त आवश्यकता है । यह कार्य मानव संसाधन विकास मंत्रालय को राष्ट्रीय स्तर पर करना चाहिये । अभिप्राय यह है कि रोजगार के अवसरों के अनुसार उच्च शिक्षा दी जानी चाहिए । क्योंकि शिक्षा के अनुसार रोजगार देना सम्भव नहीं है । रोजगार के अवसरों में स्वरोजगार योजनायें भी सम्मिलित की जानी चाहिये ।

छात्रों की शैक्षिक गुणात्मकता, शैक्षिक प्रासंगिकता तथा अनुसंधान कार्यों की गुणवत्ता बनाये रखने तथा उसे अधिक प्रभावी तथा श्रेष्ठ बनाने

---

4. सुभाषा शर्मा, "उच्च शिक्षा के लिये नीति अलग हो," नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 26 नवम्बर, 1985, पृ0-3

की दृष्टि से शिक्षकों/प्राध्यापकों का आचार-विचार, ज्ञान, सम्प्रेषण क्षमता, विषय तथा कर्तव्यों के प्रति विश्वनीयता, निष्ठा व संकल्पित जीवन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्यवश "शिक्षकों की विश्वसनीयता में भारी गिरावट आई है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अध्यापकों का चयन योग्यता के आधार पर न होकर साम्प्रदायिक, संकीर्णता, क्षेत्रीयता, धार्मिक, भाई और जातिगत आधार पर किया जाता है। शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों को यदि योग्यता के अनुसार ही भर्ती किया जाय तो शिक्षा प्रणाली में सुधार आ सकता है।"[5]

अध्यापकों के स्तर को ऊँचा उठाया जाना चाहिये। अन्ततः हर फैसला शिक्षकों द्वारा शिक्षकों पर लागू किया जाना है। इसमें स्वयं निरपेक्ष रूप से विचार करें तथा नीति निर्धारण में अंशदान करें। मेरी राय में सभी विद्यालयों में कुलपतियों तथा प्राध्यापकों की नियुक्तियां राष्ट्रीय शिक्षा आयोग द्वारा की जानी चाहिये। शिक्षकों का चयन तथा नियुक्तियां विशुद्ध गुणवत्ता के आधार पर होना चाहिये। समय तथा सेवा अनुभव भी आवश्यक तत्व है। किन्तु वास्तविक ज्ञान व सम्प्रेषण शक्ति व मौलिक शोध को पूर्ण महत्व दिया जाना चाहिये। वर्तमान समय में सेवा काल को ही प्रोन्नति का मापदण्ड माना गया है, जो उचित नहीं है। उच्च शिक्षा में ऐसे प्राध्यापकों को पुरस्कार स्वरूप प्रोन्नति दी गई है, जिसमें सम्प्रेषण, परिस्कृत ज्ञान, शोध तथा रुचिपूर्वक स्वयं का ज्ञान बढ़ाने का ध्यान नहीं रखा गया है। इसके दूरगामी परिणाम होंगे। आगे कोई भी शोध तथा ज्ञानवर्धन का प्रयास क्यों करेगा। अभिप्राय है कि विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में शिक्षकों की गुणशीलता में सतत वृद्धि के लिये भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। शिक्षक निरन्तर अपने विषय सम्बन्धी आधुनिकतम प्रगति तथा विशेष ज्ञान से परिचित रहें। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये। प्रशिक्षण तथा ज्ञानवर्द्धन के लिये सभी सुविधायें समय-समय पर विशिष्टता के आधार पर उपलब्ध कराई जानी चाहिये। यह निश्चित है कि जब तक शिक्षकों को ज्ञान परक तथा अनुसंधान गुणग्राही नहीं

---

5. एस0 मंजूर आलम- "परीक्षा प्रणाली नहीं शिक्षक दोषी", नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 26 दिसम्बर, 1985, पृ0-8

बनाया जायेगा, वे राजनीति में अधिक व छात्रों की गुणवत्ता बढ़ाने में कम ध्यान देंगे । यह सबसे गंभीर समस्या है, जिसका निराकरण सरकार के हाथ में है कि शिक्षकों को राजनीति से अलग रखने का दृढ़ संकल्प करे ।

॥3॥

यह भी सर्वमान्य है कि वर्तमान संसाधन उच्च शिक्षा प्रणाली में सुधार लाने के लिए पर्याप्त नहीं है । यदि नई शिक्षा नीति को गुणवत्ता तथा प्रासंगिकता के आधार पर किया जाना है तो हमें संसाधनों को जुटाने के लिए अधिक प्रयास करने होंगे । इस संदर्भ में कुछ सुझाव प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिन पर गहराई से विचार किया जाना चाहिये ।

1. उच्च शिक्षा का राष्ट्रीकरण किया जाय । राष्ट्रीयकरण के लिये मानदण्ड समान पाठ्यक्रम तथा सामान्य सुविधाओं के आधार पर किया जाना चाहिये ।

2. विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के लिए वित्तीय व्यवस्था भारत सरकार द्वारा की जानी चाहिये ।

3. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दिये गये अनुदानों के दुरूपयोग पर रोक लगाकर संसाधनों को उपयोगी बनाया जाय ।

4. उच्च शिक्षा में प्रवेश परीक्षा के आधार पर चयन पद्धति लागू करके दुर्लभ साधनों के अपव्यय पर रोक लगायी जाय ।

5. व्यक्तिगत स्रोतों का अधिकतम विदोहन करने का प्रयास किया जाय ।

6. सार्वजनिक कोष से न्यूनतम आवश्यकता के रूप में संसाधनों की व्यवस्था करनी चाहिये ।

7. अनावश्यक विभागों तथा संस्थाओं को नियोजित व्यवस्था के आधार पर आर्थिक कटौती या बन्द करना चाहिए ।

8. अनुसंधान के नाम पर दुर्लभ साधनों के अपव्यय पर रोक लगाया जाना चाहिये ।

9. अनुसंधान कार्यों की पुनरावृत्ति पर राष्ट्रीय स्तर पर रोक लगाया जाय ।

10. संसाधनों का नियोजित विनियोग ज्ञान कोष, क्षेत्रीय विकास व पिछड़ेपन के आधार पर आर्थिक तथा प्रौद्योगिकी विकास को ध्यान में रखते हुए किया जाय ।

11. सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वित्तीय व्यवस्था मानव संसाधन विकास के लिए विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के लिये तैयार किये जाने वाले विशेषज्ञों व तकनीकी शियनों या प्रबन्धकों पर किया जाने वाला परिव्यय सम्बन्धित क्षेत्रों के नाम करके उनके बजट में डाला जाना चाहिये । दूसरे शब्दों में, प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र अपनी प्राविधि में कुशल श्रमिक, तकनीकी व्यक्ति तथा विशेषज्ञों पर होने वाला व्यय स्वयं वहन करें । आवश्यक धनराशि विश्वविद्यालयों/संस्थाओं द्वारा व्यय किया जाय । परन्तु इसका प्राविधान सम्बन्धित क्षेत्रों द्वारा अपने बजट से करके मानव संसाधन विकास विभाग को दिया जाना चाहिये । उच्च शिक्षा में मानव संसाधन विकास की मांग करने वाले क्षेत्रों (विभागों) से समन्वय स्थापित करने के लिये संसाधन व्यवस्था करना आवश्यक है । उच्च शिक्षा प्रबन्ध की व्यवस्था, संसाधनों की व्यवस्था तथा समन्वय की जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार की होनी चाहिये ।

उच्च शिक्षा का व्यय भार पुनर्संगठन तथा अनावश्यक कार्यक्रमों को समाप्त करने तथा विभिन्न क्षेत्रों द्वारा मांग-पूर्ति तथा व्यय व्यवस्था करने के सामीकरण को अपनाने से अधिक नहीं बढ़ेगा । सरकार द्वारा दृढ़संकल्प होकर उच्च शिक्षा की गुणशीलता व प्रासंगिकता बनाने के लिये पुनर्गठन कर पूँजी विनियोग करने का निर्णय लेना पड़ेगा, अन्यथा वित्तीय संसाधनों का दुरूपयोग ही होगा ।

(14)

भारत के युवा प्रधानमंत्री, श्री राजीव गांधी ने कहा है कि विश्वविद्यालय की स्नातक उपाधि को रोजगार से निरपेक्ष रखा जायेगा । रोजगार का मुख्य आधार गुणात्मक योग्यता होनी चाहिये, न कि विश्वविद्यालय की उपाधि । अब प्रश्न यह है कि क्या रोजगार के लिये स्नातक उपाधि आवश्यक है । यदि नहीं तो, वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली में कौन से परिवर्तन आवश्यक हैं । क्या

चीन की तरह विश्वविद्यालय बन्द किये जायं । यदि नहीं तो विश्वविद्यालयों की भूमिका का पुनर्गठन व आंकलन किस आधार पर होना चाहिए । उच्च शिक्षा को व्यवसाय तथा रोजगार परक कैसे बनाया जाय । इन समस्याओं/प्रश्नों के उत्तर ढूढ़ने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय प्रादेशिक सरकारों तथा नियोजकों के बीच दृढ़ संकल्प तथा समन्वय की आवश्यकता है, अन्यथा स्नातक उपाधि की रोजगार के अवसरों में निरपेक्षता एक कोरी भावनात्मक कल्पना मात्र होगी ।

सर्वमान्य बात है कि उच्च शिक्षा के स्तर में कमी आई है । विश्वविद्यालयों द्वारा दी गई उपाधियों की विश्वसनीयता में गिरावट आई है । आजकल विश्वविद्यालयों में छात्रों को अधिक अंक देने की परम्परा चल पड़ी है और इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल रहा है, यद्यपि आंशिक रूप से शिक्षा प्रणाली भी जिम्मेदार है ।

रोजगार को उपाधि निरपेक्ष बनाने के सम्बन्ध में राष्ट्र के प्रबुद्ध वर्ग दो विचारधाराओं में विभाक्त हैं । प्रथम वर्ग के विद्वजनों की राय है कि उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम को रोजगार के अवसरों के अनुरूप तैयार करके सम्पूर्ण देश में समान स्तर पर लागू किया जाना चाहिये । इस कार्य के लिये राष्ट्रीय उच्च शिक्षा परिषद् का गठन किया जाना चाहिये । यह आवश्यक हो गया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करके उच्च शिक्षा को रोजगार परक बनाया जाय । गुणवत्ता को बढ़ावा देने के लिये कुछ मूलभूत परिवर्तन किये जाने चाहिये । स्नातक उपाधि को तुरन्त रोजगार के अवसरों से अलग करना सम्भव नहीं है । इस अन्तर्सम्बन्ध को तोड़ने के लिये व्यापक, प्रभावशाली सुधार तथा अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता होगी । सभी सेवाओं तथा रोजगार के साधनों से स्नातक उपाधि को विलग करना व्यावहारिक व सामयिक भी नहीं है । उदाहरणार्थ, भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, आदि उच्च स्तरीय केन्द्रीय तथा राज्य स्तरीय सेवाओं के लिये बारहवीं कक्षा (10+2) उत्तीर्ण युवकों का चयन नहीं किया जा सकता है । क्योंकि इन श्रेष्ठ सेवाओं के लिये पूर्ण विकसित प्रतिभाओं का चयन किया जाता है, जो स्नातक स्तर पर ही विकसित होती हैं । इसी कारण जब इण्डियन सिविल एकेडेमी के लिए स्नातक उपाधि आवश्यक कर दी गई है ।

इस के विपरीत दूसरी विचारधारा के विद्वानों का विचार है कि केन्द्रीय सेवाओं तथा राज्य की उत्कृष्ठ सेवाओं के लिए भी चयन बारहवीं परीक्षा पास युवकों में से किया जा सकता है । चयन के पश्चात् उनको तीन से पांच वर्षों का व्यापक प्रशिक्षण तथा शिक्षण दिया जा सकता है । तीन वर्षों के प्रशिक्षण के पश्चात् उन्हें स्नातक की उपाधि तथा पांच वर्षों के पश्चात् स्नातकोत्तर उपाधि दी जा सकती है । रक्षा सेवाओं की भांति केन्द्रीय सेवाओं के लिये संयुक्त चुनाव प्रक्रिया को प्रारम्भ किया जा सकता है । इसमें इण्टरमीडिएट (10+2) आधार शिक्षा स्तर माना जा सकता है । तीन वर्षों के सामुहिक प्रशिक्षण के पश्चात् उनकी रुचि, तथा मनोवृत्ति के आधार पर प्रशासनिक, विदेश, पुलिस आदि सेवाओं का दो वर्षों का विशिष्ठ शिक्षण दिया जा सकता है । उदाहरणार्थ, वर्तमान समय में इंजीनियरिंग, तकनीकी शिक्षा तथा डाक्टरों के लिए प्रवेश परीक्षायें की जाती हैं, जिनके लिए आधार शिक्षा स्तर बारहवीं कक्षा मानी गई है । यदि रक्षा, तकनीकी तथा स्वास्थ्य सेवाओं के लिये यह समीकरण लागू किया जा रहा है और पूर्ण सफलता मिली है, तो अन्य केन्द्रीय तथा राज्य स्तरीय सेवाओं के लिये क्यों नहीं किया जा सकता है ।

दोनों पक्षों के विचारों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि समस्त सेवाओं तथा रोजगारों को स्नातक उपाधि से निरपेक्ष नहीं किया जा सकता है । मात्र बारहवीं शिक्षा स्तर को समस्त जीवनोपयोगी सेवाओं के लिये आधार सीमा नहीं माना जा सकता है, चाहे केन्द्रीय सेवायें हों या राज्य स्तरीय अथवा स्वरोजगार सम्बन्धी । उदाहरण के लिये, शिक्षक, वकील, विषय विशेषज्ञ, आदि विशेषज्ञ से मानवीय तथा सामाजिक विज्ञान (कला विषयों) में उपाधि तथा अनुसंधान ज्ञान की विशेषता प्राप्त विद्वजनों की आवश्यकता सामाजिक सेवाओं में बनी रहेगी । अत: वर्तमान परिस्थितियों में रोजगार को उपाधि निरपेक्ष सीमित मात्रा में किया जाना सम्भव है । कुछ अपेक्षित सुझाव प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनको उच्च शिक्षा की नई रीति निर्धारण करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिये ।

राष्ट्रीय स्तर पर समानता, गुणवत्ता तथा प्रासंगिकता बनाये रखने के लिये बारहवीं कक्षा (10+2) तक की शिक्षा को आधार मानकर उच्च शिक्षा को विशिष्टीकरण की दृष्टि से विशिष्ठ सेवाओं के अनुरूप पुनर्गठित किया जा सकता है । विभिन्न सेवाओं को यहां इस मॉडल में वर्गीकृत किया गया है ।

1. राष्ट्रीय तकनीकी तथा वैज्ञानिक विकास को ध्यान में रखते हुए उच्च शिक्षा तथा प्रशिक्षण देने के लिए अखिल भारतीय तकनीकी परिषाद् की स्थापना की जानी चाहिये । राष्ट्रीय औद्योगिक तथा आर्थिक विकास की तकनीकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इस परिषादें द्वारा विभिन्न तकनीकी ज्ञान व विशिष्टीकरण के अनुकूल राष्ट् स्तरीय इंजीनियरिंग तथा तकनीकी संस्थान, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय तथा व्यावसायिक संस्थानों की स्थापना करनी चाहिये । यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान आई0आई0टी0 तथा विश्वविद्यालयों तथा अन्य सभी तकनीकी संस्थानों को इस परिषाद् के अन्तर्गत रखा जा सकता है । पूरे राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रमों को निर्धारित करके इसी परिषाद द्वारा प्रवेश परीक्षायें सम्पन्न की जानी चाहिये । शिक्षण तथा प्रशिक्षण व्यवस्था विभिन्न उद्योगों, प्रतिष्ठानों व रोजगार के अवसरों की मांग के अनुसार निर्धारित की जायं । सामान्य रूप से यह अवधि तीन से पांच वर्ष हो सकती है । सभी प्रकार की तकनीकी सेवाओं, की पूर्ति की पूर्ण जिम्मेदारी अखिल भारतीय तकनीकी परिषाद् की होनी चाहिये ।

2. स्वास्थ्य चिकित्सा के लिये अखिल भारतीय मेडिकल परिषाद् की स्थापना आवश्यक है । इस परिषाद् द्वारा सम्पूर्ण राष्ट् के लिये राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवा पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिये । देश के समस्त मेडिकल कालेजों तथा संस्थानों को इस परिषाद् के द्वारा प्रवेश परीक्षाओं के आधार पर शिक्षण तथा प्रशिक्षण के लिये भर्ती किया जाना चाहिये । विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्य कताओं तथा मांगों को ध्यान में रखकर शिक्षण व प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व समयावधि निश्चित की जानी चाहिये । उच्च योग्यता प्राप्त करने के इच्छुक युवकों को गुणशीलता तथा अभिरुचि के आधार पर अवसर प्रदान किये जाने चाहिये । सामान्यत: शिक्षण अवधि पांच से सात वर्ष हो सकती है । स्नातक तथा अतिविशिष्ठ

सेवाओं तथा ज्ञान प्राप्ति के लिये उच्च स्तरीय व्यवस्था उपलब्ध कराना भी उच्च शिक्षा नीति का अभिन्न अंग व सरकार की जिम्मेदारी होनी चाहिये । समस्त स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सेवाओं के लिए मानव संसाधन तैयार करने का कार्य अखिल भारतीय स्वास्थ्य एवं चिकित्सा परिषद् का होना चाहिये ।

3. केन्द्रीय तथा राज्य स्तरीय उत्कृष्ट सेवाओं के लिए पूर्ण विकसित प्रतिभाओं का चुनाव करने के लिये यह आवश्यक है कि एक विशिष्ट संस्था- अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा परिषद् के नाम से स्थापित की जानी चाहिये । इस संस्था द्वारा इन सेवाओं के लिये राष्ट्रीय स्तर पर एक पाठ्यक्रम ‘संयुक्त’ तथा दूसरा ‘विशेष प्रशासकीय प्रबन्ध’ के लिए तैयार किया जाय । इसमें तीन वर्ष का शिक्षण संयुक्त रूप से राष्ट्रीय स्तर पर किया जाना चाहिये । तीन वर्ष के शिक्षण/प्रशिक्षण के पश्चात् सेवाओं की आवश्यकता व मांग के अनुरूप प्रशिक्षणार्थियों का पुन: चुनाव विशेष प्रशासकीय सेवाओं के लिए किया जाना चाहिये । उदाहरणार्थ, आई०ए०एस०, आई०एफ०एस०, आई०पी० एस० आदि समस्त प्रशासकीय सेवाओं के लिये पुन: प्रशिक्षणार्थियों की अभिरुचि, मनोवृत्ति, तथा गुण ग्राहयता के आधार पर चयन कर अग्रिम विशिष्ट प्रशासकीय प्रबन्ध शिक्षण दिया जाना चाहिये । संयुक्त शिक्षण अवधि तीन वर्ष तथा विशिष्ठ प्रशासकीय प्रबन्ध शिक्षण अवधि दो वर्ष हो सकती है । इस प्रकार के शिक्षण व प्रशिक्षण के लिये भारत सरकार द्वारा वर्तमान राज्य तथा राष्ट्र स्तरीय संस्थानों व संस्थाओं का पुनर्गठन करके किया जा सकता है । आवश्यकतानुसार नये संस्थानों की स्थापना की जा सकती है । यह जिम्मेदारी अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा परिषद् की होगी । इन सेवाओं में विशिष्टीकरण के द्वार शोध तथा ज्ञानवर्धन के लिये खुले रहने चाहिये । इस संस्था द्वारा प्रशिक्षित तथा चयनित युवक राज्य स्तरीय सेवाओं के लिये भी मांग के अनुसार तैयार किये जाने चाहिये । राज्य स्तरीय सेवाओं के लिये भी मांग के अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति राष्ट्र के लिये किसी भी राज्य अथवा जनपद में आवश्यकता पड़ने पर भेजा जा सकता है । पंजाब की जैसी समस्या आने पर कोई प्रशासनिक कठिनाई नहीं आयेगी ।

4. भारत, जैसे विकासशील राष्ट्र में वित्तीय संसाधनों की दुर्लभता तथा उनके सदुपयोग की दृष्टिगत करते हुए यह भी आवश्यक जान पड़ता है कि राष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय तथा बैंक सेवाओं के लिये पृथक से अखिल भारतीय वित्त एवं बैंक सेवा परिषाद् की नितान्त आवश्यकता है । यदि वित्तीय प्रबन्धा तथा बैंक प्रशासनिक व्यवस्था को चुस्त व सक्षम बनाया जाय तो, भारत के आर्थिक विकास के लिये हीनार्थ प्रबन्धा की आवश्य कता नहीं होगी तथा विदेशी मुद्रा की कमी को स्वत: राष्ट्र पूरा करने में सक्षम हो जायेगा । सम्पूर्ण देश में अर्थ तंत्र चलाने तथा उनकी प्रबन्धाकीय व्यवस्था करने के लिये भी उच्च कोटि के परामर्शदाताओं से लेकर व्यवस्थापकों/प्रबन्धाकों तथा दक्ष कर्मचारियों की विभिन्न स्तरों तथा क्षेत्रों में आवश्यकता है । इसकी मांग कई स्तरों के प्रशिक्षित व्यक्तियों के रूप में आंकी जा सकती है । आवश्यकतानुसार परिषाद् विभिन्न स्तरों के लिये पाठ्यक्रम तैयार कर सकता है । इस पाठ्यक्रम के अनुसार चयन तथा प्रवेश किया जा सकता है । निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार शिक्षाण तथा प्रशिक्षाण समयावधि दो वर्ष से पांच वर्ष तक रखा जा सकता है । दो वर्ष तक का प्रशिक्षाण सामान्य वित्तीय व बैंकिंग पद्धति के लिए आवश्यक माना जाना चाहिये । विशिष्ठ वित्तीय तथा बैंकिंग सेवाओं के लिये उत्कृष्ट ज्ञान तथा प्रतिभा सम्पन्न प्रशिक्षणार्थियों में से चयन करके विशिष्ट ज्ञान व शोधा के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।

5. आधुनिक औद्योगीकरण व तकनीकी विकास को ध्यान में रखाते हुए यह भी सामयिक मांग है कि अर्थ एवं सांख्यिकीय सेवाओं तथा औद्योगिक सामान्य प्रबन्धाकों की विभिन्न सेवा स्तरो पर आवश्यकता है और मांग बढ़ती ही जायेगी । इन सेवाओं के लिये भी राष्ट्रीय स्तर पर समग्र व्यवस्था की जानी चाहिये । इसके लिये अखिल भारतीय अर्थ, सांख्यिकीय तथा सामान्य प्रबन्धा सेवा परिषाद् का गठन किया जाना चाहिये । इस संस्था द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर एक सामान्य पाठ्यक्रम आवश्यकतानुसार तैयार किया जाना चाहिये । प्रशिक्षाणकाल दो वर्ष से लेकर पांच वर्ष तक रखा जा सकता है । प्रशिक्षाण तथा शिक्षाण के लिए राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिये, जिसमें इन सेवाओं के लिये उपयुक्त मानव संसाधान तैयार किये

जा सकें । इन सेवाओं के लिये सामान्य स्तर से लेकर विशिष्ठ सेवाओं तथा व्यक्तियों का गुणवत्ता के आधार पर चयन करके शिक्षण काल में वृद्धि की जा सकती है । इस शिक्षण व्यवस्था में कम्प्यूटर शिक्षण व प्रोग्राम प्लानिंग शिक्षण को एक आवश्यकीय अंग बनाया जाना चाहिये । अर्थ, सांख्यिकी, कम्प्यूटर तथा औद्योगिक सामान्य प्रबन्ध सेवाओं के लिये विशिष्ठ ज्ञान व गुणशीलता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की अभिरुचि, मनोवृत्ति तथा आवश्यक ज्ञान के स्तर के अनुसार चयनित किया जाय ताकि वे अति विशेष योग्यता या विशिष्टीकरण के आधार पर प्राप्त कर सकें ।

6. मानव जीवन की विशिष्ठ सेवाओं के प्रशिक्षण तथा अति विशिष्ठ शिक्षण देकर अर्थ तंत्र में आर्थिक मानव नहीं बनाया जाना चाहिये । समाज में संस्कृति तथा मानव मूल्यों को बनाये रखना हमारी उच्च शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये । भारतीय संस्कृति के जीवन तथा परम्पराओं से जुड़े सामाजिक तथा मानव जीवन सम्बन्धी कई विषाय हैं, जिनकी आज के भौतिकवादी युग में अधिक आवश्य कता महसूस की गई है । विभिन्न विषायों के ज्ञान की कोई सीमा आज के वैज्ञानिक युग में निर्धारित नहीं की जा सकती है । वर्तमान समय में चल रहे विश्वविद्यालयों में छात्रों की अनावश्यक भीड़ तथा उपाधियों की गिरती हुई विश्वसनीयता को रोक लगाने का प्रयास तभी सफल होगा, जब हम विश्वविद्यालयों को ज्ञान का केन्द्र बनाने के कदम उठायेंगे । विश्वविद्यालयीय शिक्षा ज्ञानवर्धन बनाने के उद्देश्य से स्नातक उपाधि के लिए इच्छुक छात्रों का चयन प्रवेश परीक्षा के आधार पर किया जाना चाहिये । प्रवेश चाहने वाले छात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा अभिरुचि का परीक्षण भी किया जाना आवश्यक है । इन परिनियमों के अन्तर्गत मात्र वहीं युवक विश्वविद्यालयीय शिक्षा ग्रहण करना चाहेगा, जो वास्तव में ज्ञान पिपासु होगा, क्योंकि जब तक यह किसी विषाय का विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं करता, उसे रोजगार अथवा सेवा की आशा नहीं रह जायेगी । स्नातक उपाधि किसी भी सेवा के लिये आवश्यक नहीं मानी जायेगी । विशिष्ट सेवाओं के लिए विशिष्ट ज्ञान की मान्यता अवश्य रह जायेगी । अत: स्नातक स्तर पर दो वर्षों का शिक्षण काल होना चाहिये । स्नातकोत्तर स्तर में पदार्पण करने वाले

छात्र के लिये विषाय विशेषा का एक वर्षा का शिक्षाणकाल अनिवार्य होना चाहिये, जिसमें उसे विषाय विशेषा के पाठ्यक्रम के अनुरूप विशेषा योग्यता प्राप्त करनी चाहिये । यह स्नातक विशेषा भी कहा जा सकता है । इस एक वर्षा की अवधि में वह स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाये जाने वाले विषाय का न्यूनतम ज्ञान प्राप्त करेगा, ताकि उसे स्नातकोत्तर स्तर पर विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाई न हो । इस स्तर पर छात्र की गुणावत्ता, पाठ्यक्रम की समानता तथा उपाधि की विश्वसनीयता बनाने में योगदान मिलेगा । स्नातकोत्तर शिक्षा दो वर्षा का हो सकता है । विषाय का विशेषा ज्ञान तथा उत्कृष्ट विद्वता प्राप्त करने के लिये शोधा कार्य को मौलिक तथा व्यावहारिक बनाना होगा । आधुनिक समय में उच्च स्तरीय शोधा कार्य को सम्पन्न करने के लिये वैज्ञानिक पद्धतियों का विकास हुआ है । अत: एक वर्षा तक शोधाकर्ता को शोधा पद्धति का शिक्षाण/प्रशिक्षाण आवश्यक माना जाना चाहिये । शोधा कार्य मात्र विश्वविद्यालयों में ही गुणावत्ता तथा ज्ञान की परीक्षा प्रक्रिया के अनुसार छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिये ।

7. रोजगार को उपाधि निरपेक्ष बनाने, मानवीय मूल्यों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं को बनाये रखने के उद्देश्य से उच्च शिक्षा तथा विशिष्ठ सेवाओं के लिये सुझाये गये भारतीय गणराज्य के संविधान की व्यवस्थाओं, बढ़ती हुई जनसंख्या व उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह भी आवश्यक है कि हम उच्च शिक्षा के द्वार सबके लिये खुले रखें । किसी भी विषाय का ज्ञान प्राप्त करने की पिपासा पूरी करने के लिये भारत में सामान्य व्यक्ति के लिये उच्च शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिये । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सुझाव है कि खुले विश्वविद्यालय तथा पत्राचार शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाय । साधनहीन, शिक्षकविहीन तथा छात्र अल्पता वाले महाविद्यालयों को बन्द किया जाना चाहिये ताकि दुलर्भ संसाधनों के दुरूपयोग पर रोक लगाई जा सके । खुली विश्वविद्यालय तथा पत्राचार पद्धति द्वारा स्नातक उपाधि तथा स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने में उन लोगों को सुविधाएं तथा अवसर प्राप्त होंगे जो बारहवीं कक्षा के पश्चात् सेवाओं में लगे हैं, किन्तु अपना ज्ञानवर्द्धन करना चाहते हैं । पत्राचार व्यवस्था द्वारा किसी

प्रकार का प्रशिक्षण नहीं दिया जाना चाहिये । उदाहरणार्थ, वर्तमान समय में विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा पत्राचार के नाम पर बी०एड० तथा एम०एड० की उपाधियाँ बेची जाती हैं । पत्राचार शिक्षण पद्धति में आवश्यक शर्तें यह होनी चाहिये कि राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के अनुसार ही पत्राचार परीक्षायें सम्पन्न होगी, ताकि शिक्षा की गुणवत्ता तथा समानता में कोई अन्तर न आने पाये ।

8. राष्ट्रीय स्तर पर कुछ सेवायें ऐसी है, जिनमें समानता के होते हुए भी शैक्षिक स्तर असमान तथा त्रुटिपूर्ण हैं । उदाहरणार्थ, बार काउन्सिल के निर्देशों के अनुसार कानूनी शिक्षा का शिक्षण काल बढ़ाया गया है । परन्तु उसमें भी राष्ट्रीय स्तर पर एक पाठ्यक्रम की विशिष्टता की कमी है । कानूनी शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रवेश चयन तथा परीक्षा के आधार पर किया जाना चाहिये । कानूनी शिक्षा का स्तर गुणवत्ता के आधार पर ऊँचा उठाने के लिये कम से कम पाँच वर्ष का शिक्षण होना अनिवार्य माना जाना चाहिये । उसमें एक वर्ष का समय न्यायालयों में व्यावहारिक ज्ञान व कार्य के लिये निर्धारित किया जाना चाहिये ।

9. उच्च शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में रोजगार को उपाधि निरपेक्ष बनाने के उद्देश्य से विभिन्न सेवाओं का वर्गीकरण करके विशिष्ठता तथा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों का चयन व प्रशिक्षण की पद्धति के सुझाव दिये गये हैं । इनके अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे वर्गीकरण भी किये जा सकते हैं । जिनमें शिक्षा का आधार स्तर मात्र बारहवीं कक्षा ही हो सकता है । एक विशेष बात इस विश्लेषण के दौरान उभर कर आई है कि इन समस्त विशिष्ट सेवा संस्थानों तथा महाविद्यालयों में, जिनमें वर्गीकरण के अनुसार शिक्षण/प्रशिक्षण दिया जाता है, योग्य तथा विशिष्टता प्राप्त विद्वानों की पूर्ति कैसे की जायेगी । इसके अतिरिक्त बारहवीं तक की शिक्षा देने के लिए भी शिक्षकों की आवश्यकता होगी । इस मांग की पूर्ति मांगी गई योग्यताओं पर निर्भर करेगी । यहाँ भी योग्यताओं की विभिन्नता होगी । अत: प्रशिक्षित शिक्षकों की मांग को तीन भागों में विभाजित करके विश्लेषित किया जा रहा है- बेसिक शिक्षा (कक्षा आठ तक), माध्यमिक शिक्षा (10+2) तक तथा उच्च शिक्षा । इनमें प्रथम दो श्रेणियों के शिक्षकों को स्नातकोत्तर उपाधि आधार माना

जाना चाहिये । उन्हें अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा चयनित कर विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण के लिये भेजा जाना चाहिये । उन्हें प्रवेश के पश्चात् दो वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाय । पुनः चयन परीक्षा के आधार पर अधिक ज्ञान व गुणवत्ता वाले प्रशिक्षार्थी को एक वर्ष का विशिष्ठ प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये । तीन वर्ष का प्रशिक्षण पूर्ण करने वाले शिक्षकों को माध्यमिक शिक्षा में तथा दो वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों को बेसिक शिक्षा में नियुक्त किया जाना चाहिये । यह भी विशेष ध्यान देने की बात है कि उच्च शिक्षा के स्तर को बनाये रखने के लिये शिक्षकों को सेवा काल के दौरान लगातार प्रशिक्षण तथा ज्ञान की आधुनिकतम खोज से सम्बद्ध रखना आवश्यक है । उच्च शिक्षा देने के लिये विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को पुनर्गठित करने की प्रक्रिया में शिक्षकों का चयन तथा उनके प्रशिक्षण व आधुनिक ज्ञान से सम्बद्ध रखने के लिये यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयीय शिक्षकों का चयन भी अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा परिषद् के द्वारा किया जाना चाहिये । चयन के पश्चात् विषय विशेषज्ञों द्वारा कम से कम एक वर्ष का प्रशिक्षण विधि तथा शोध विधि में दिया जाना चाहिये । उच्च स्तरीय सम्प्रेषण तथा शोध क्षमता को वरीयता दीजाय । विश्वविद्यालय के विषय विशेषज्ञों द्वारा अपने विषय के समर इन्स्टीट्यूट अनिवार्य रूप से प्रारम्भ किये जाने चाहिये । यह व्यवस्था परिषद् के कार्य पद्धति का एक अंग माना जाना चाहिये ।

इस अध्ययन में नई पद्धति की परिकल्पना व्यावहारिक धरातल पर की गई है । जिसमें निश्चित रूप से समस्त विशिष्ट सेवाओं के लिये विशिष्ट संस्थान तथा विशिष्ट योग्यता प्राप्त वित्तार्नों की आवश्यकता होगी । भारत में ऐसे मानव संसाधनों की कमी नहीं है । समस्या केवल एक बार राष्ट्रीय स्तर पर दृढ़ निश्चिय तथा पुनर्संगठन की है । पुनर्गठन की प्रक्रिया में अतिरिक्त वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता हो सकती है, जो राष्ट्रीय सामर्थ्य के बाहर नहीं होगा । वर्तमान समय व परिस्थितियों को देखते हुए रोजगार को उपाधि निरपेक्ष बनाने तथा उच्च शिक्षा के लिये नये ढ़ंग से नीति निर्धारण करने का दृढ़ संकल्प सामर्थ्य के बाहर अवश्य लगता है ।

स्नातक उपाधि निरपेक्षकता को मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया गया है :॥म॥

(ग)

सीमित रोजगार-स्नातक उपाधि निरपेक्षता: मॉडल

आधारिक शिक्षा: बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण (10+2)

चयन

(1) अखिल भारतीय तकनीकी परिषद्

इंजीनियरिंग व तकनीकी शिक्षा संस्थान/विश्वविद्यालय

प्रशिक्षण काल-3 से 5 वर्ष

(2) अखिल भारतीय मेडिकल परिषद्

स्वास्थ्य व चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय/विश्वविद्यालय

समयावधि- 5 से 7 वर्ष

(3) अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा परिषद् (आई0ए0एस0, आई0एफ0एस0, आई0पी0एस0 आदि का संयुक्त)

राष्ट्रीय संयुक्त प्रशिक्षण संस्थान

प्रशिक्षण अवधि- 3 वर्ष

परीक्षण, परिवीक्षण के आधार पर विशेष प्रतिभाओं का चयन विभिन्न सेवा मांग अनुसार

विशेष प्रशिक्षण (समय- 2 वर्ष)

(4) अखिल भारतीय वित्त एवं बैंक सेवा परिषद्

संयुक्त सेवा प्रशिक्षण संस्थान

प्रशिक्षण काल-2 वर्ष

श्रेणी व सेवा मांग अनुसार मूल्यांकन

विशेष सेवा प्रशिक्षण

(समय- 2 वर्ष)

(5) अखिल भारतीय अर्थ, सांख्यिकी व औद्योगिक सेवा परिषद् (संयुक्त)

प्रशिक्षण संस्थान

प्रशिक्षण काल- 3 वर्ष

विभिन्न सेवानुसार विशिष्टता पर चयन

प्रशिक्षण समय- 2 वर्ष

विशिष्टीकरण विभिन्न क्षेत्रों में

(6) अखिल भारतीय विश्वविद्यालय परिषद्

चयन-स्वीकृत समान पाठ्यक्रमानुसार

स्नातक उपाधि पाठ्यकाल-2वर्ष

स्नातक (विशेष)- 1 वर्ष

स्नातकोत्तर- 2 वर्ष

अनुसंधान-मात्र विश्वविद्यालयों में

(7) खुला विश्वविद्यालय व पत्राचार शिक्षण

स्नातक -2 वर्ष

राष्ट्रीय पाठ्यक्रमानुसार

स्नातक (विशेष)-1 वर्ष

स्नातकोत्तर- 2 वर्ष

(8) स्नातकोत्तर उपाधि के पश्चात

अखिल भारतीय प्रशिक्षण परिषद्

प्रशिक्षण- 2 वर्ष

सेवाकालीन निरन्तर प्रशिक्षण

शोध तथा शोध पत्र प्रेषण

(9) अखिल भारतीय कानून परिषद्

चयन-स्नातक उपाधि पाठ्यक्रम

शिक्षण-5 वर्ष

व्यावहारिक शिक्षण - 1 वर्ष

शोध

(5)

राष्ट्रीय स्तर पर स्नातक तथा उच्च शिक्षा के लिए समान पाठ्यक्रम की व्यवस्था के पक्ष में राय व्यक्त करने पर शिक्षा के माध्यम का प्रश्न उठाता है। कुछ शिक्षाविदों की राय है कि उच्च शिक्षा का माध्यम किसी भी भारतीय भाषा को नहीं स्वीकार किया जा सकता है। उनकी राय में उच्च शिक्षा के लिये अभी तक तकनीकी शब्दावली, शब्दकोष तथा मौलिक पुस्तकों के अनुवाद भी उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी भारत राष्ट्र की राष्ट्र भाषा के रूप में अभी तक पूर्णरूप से स्वीकार नहीं की जा सकी है। उसमें भी संदर्भ तथा मौलिक पुस्तकें उच्च शिक्षा के लिये उपलब्ध नहीं की जा सकी हैं। अतः हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाना उचित प्रतीत नहीं होता। दूसरे वर्ग के विद्वानों का विचार है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा[6] के रूप में हमने राष्ट्रीय स्तर पर 1925 में स्वीकार किया था। हमारे संविधान में भी स्वीकार किया गया है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा रहेगी। परन्तु जब तक हिन्दी का पूर्ण राष्ट्रीय स्तर पर विकास नहीं हो जाता, तब तक अंग्रेजी हिन्दी की सहचरी के रूप में चलती रहेगी। दुर्भाग्यवश, ब्रिटिश शासन तथा शिक्षा प्रणाली ने स्वतन्त्रता के पश्चात अंग्रेजी को इतना अधिक प्रश्रय दिया कि अब भारत राष्ट्र की एकता और सांस्कृतिक समग्रता में रुकावटें आने लगी हैं। दक्षिण भारतीय राज्यों में तमिलनाडु तथा आन्ध्र प्रदेश हिन्दी विरोधी प्रचार व प्रसार में अग्रणी बन गये हैं। शिक्षा की चुनौती नामक रिपोर्ट में भी इस सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार नहीं किया गया है। शिक्षा के माध्यम के विषय में शिक्षा मंत्रालय मौन है। भारत, जैसे बहुभाषाई राष्ट्र में संस्कृति तथा चिंतन के लिये हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में मान्यता देनी ही पड़ेगी। त्रिभाषा फारमूला को स्वीकार किया जाना चाहिये। हमें हिन्दी भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम मानना ही होगा, तभी राष्ट्रीय एकता व सांस्कृतिक परम्पराओं को संजोये रखा जा सकता है। आज या कल हमें हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठापित करना ही होगा। अतः उच्च शिक्षा की नीति निर्धारित करते समय हिन्दी को शिक्षा का माध्यम घोषित किया जाना चाहिये, जो भारतीय संविधान के अनुकूल होगा।

---

6. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 19 से 25 जनवरी, 1986, पृ0-49

संदर्भ

1. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली । – "नई शिक्षा की चुनौती: नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य", अगस्त, 1985

2. नरेन्द्रमोहन – "हमारी शिक्षा नीति कैसी हो ।" धर्मयुग, वर्ष 36, अंक 48, दिसम्बर, 1985, पृ038-39

3. गोविन्द लाल – "उच्च शिक्षा:उद्देश्य की स्पष्टता जरूरी है ।" साप्ताहिक हिन्दुस्तान, वर्ष 35, अंक 42, 28 जुलाई से 3 अगस्त, 85, पृ0-10

4. जैल सिंह – "वर्तमान शिक्षा प्रणाली कितनी है"- नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, रविवार 3 नवम्बर, 1985, पृ0-1

5. जितेन्द्र बजाज – "नई शिक्षा नीति"-4, "उन जड़ों को फिर धरती दो", "जनसत्ता", 9 नवम्बर, 1985, पृ0-4

6. – "हमारी शिक्षा बच्चों को कैद रखने का उपाय है ।" नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 5 नवम्बर, 1985, पृ0-5

7. राजीव गांधी – "शिक्षा प्रणाली मौजूदा जरूरतें पूरी करें" "जनसत्ता" शनिवार, 7 दिसम्बर 1985, पृ0-1

8. जैल सिंह – "शिक्षा ऐसी हो कि संविधान के प्रति आदर जगे: जैल-"जनसत्ता", नई दिल्ली शुक्रवार, 6 सितम्बर, 1985, पृ0-1

9. – "शिक्षा नीति के नये दस्तावेज लीक से हटकर" "जनसत्ता" नई दिल्ली, शुक्रवार 18 अक्टूबर, 1985, पृ0-2

10. – "शिक्षा नीति में व्यापक सुधार की जरूरत" "अमर उजाला", बरेली, 23 अक्टूबर, 1985, पृ0-4

11. – "शिक्षा नीति में बदलाव समाज से जुड़कर हो", "नव भारत टाइम्स", नई दिल्ली, 29 दिसम्बर, 85, पृ0-8

12. जैल सिंह – "परीक्षा प्रणाली नहीं, शिक्षक दोषी" नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 26 दिसम्बर, 1985, पृ0-8

13. यदुनाथ थते – "नई शिक्षा नीति और मुस्लिम भारतीय" नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1985 पृ0-4

14. प्रतिनिधि – "कब खुलेगा सब के लिए खुले विश्वविद्यालय" का दरवाजा" युक्ता, अंक 462, पृ0-23-31

15. – "ऊँची शिक्षा सिर्फ योग्य छात्रों को ही मिले" जनसत्ता, 10 जनवरी, 1986, पृ0-3

16. – "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", 19 से 23 जनवरी, 1986, पृ0-49

17. – "शिक्षा में आमूल सुधार जरूरी", नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 23 दिसम्बर, 1985, पृ0-5

18. सुभाषा शर्मा – "उच्च शिक्षा के लिये नीति अलग हो" नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 26 नवम्बर, 1985, पृ0-3

19. सत सोनी – "नई शिक्षा नीति में क्या ये बातें होगी", उक्त, 20 नवम्बर, 1985, पृ0-4

20. – "डिग्री की अनिवार्यता खत्म करने पर शिक्षाविदों में मतभेद", नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, अक्टूबर 14, 1985, पृ0-8

21. – "उच्च शिक्षा सीमित रखाने के सवाल: शिक्षाविद एक मत नहीं", "हिन्दुस्तान", 18 मई, 1985, नई दिल्ली, पृ0-5

22. – "शिक्षा को राजनीति से मुक्त रखाना जरूरी" राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर गोष्ठी, नव भारत टाइम्स, 18 अक्टूबर, 1985, पृ0-1

23. – "डिग्री और नौकरी : शिक्षाविद क्या कहते हैं". नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 29 अप्रैल, 1985 पृ0-7

24. – "लोकसता प्रश्नोत्तर "नई शिक्षा नीति अगले सत्र में पूर्व तैयार हो जायेगी-" नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 19 अप्रैल, 1985, पृ0-7

25. वैंकटरमन - "शिक्षा को रोजगार की गारण्टी न समझे" नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 8 अप्रैल, 85 पृ0-7

26. - "विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को खाबर नहीं अपने अनुदान की"- नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 20 मार्च, 1985, ।उ0प्र0। पृ0-1

27. अखिलेश्वर झा - "उच्च शिक्षा का वास्तविक संकट"- नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 23 जनवरी, 1985, पृ0-4

28. सुरेश बंसल - "ऐसी बने नई शिक्षा नीति", नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 8 जनवरी, 1986, पृ0-4

29. प्रशान्त कुमार बनर्जी - "शिक्षा की नई नीतियां : दुनियां के घोरे में"- मुक्ता, अंक 462, नवम्बर ।द्वितीय। 1985, पृ0-18

30. अजित कुमार दास - "वास्तविक शिक्षा रोजगार मिलने के बाद शुरू होती है"- मुक्ता, अंक 462, नवम्बर, 1985, पृ0-24

31. राधेश्याम गुप्ता - "उच्च शिक्षा चुने हुए छात्रों को ही मिलनी चाहिए," मुक्ता, अंक 452, नवम्बर, 1985, प10-25

32. प्रो0 मुनिस रजा - "नई नीति बनाने से पहले हमें पुरानी खामियों को पहिचानना होगा", मुक्ता, अंक-462, नवम्बर, 1985, पृ0-27

33. डॉ0 पी0एल0मल्होत्रा - "ये नहीं मानता कि अभी तक शिक्षा खराब रही है या कम रही है," मुक्ता, नवम्बर, 1985, पृ0-28

34. पी0एन0श्रीवास्तव - "नई पद्धति का उद्देश्य उच्च शिक्षा पर रोक लगाना नहीं," मुक्ता, नवम्बर, 1985, पृ0-29

35. प्रो0 रईस अहमद - "शिक्षा को अधिक व्यावसायिक बनाया जाना चाहिये," मुक्ता, नवम्बर, 1985, पृ0-30

उच्च शिक्षा नीति और हिन्दी का अध्ययन

- डॉ० हरिमोहन

भारत सरकार द्वारा अगस्त, 1985 में सारे देश में बहस के लिए प्रकाशित दस्तावेज "शिक्षा की चुनौती" (नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य, प्रकाशन सं०-1513) शिक्षा-नीति के पुनर्निर्माण की प्रस्तावना है। निःसंदेह, वह कोई ऐसी राजाज्ञा प्रश्नावली नहीं है, जिसमें हम अपने सारे सवालों का कोई संतोषप्रद हल पा सकें। हाँ, वह बहस का एक आधार अवश्य है।

इस दस्तावेज में मूल्यों के तेजी से हो रहे ह्रास तथा परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन में व्याप्त प्रदूषण पर चिन्ता व्यक्त करते हुए, शिक्षा के क्षेत्र में भी घटित इसके दुष्परिणामों पर ध्यान दिलाया गया है और सोचा गया है कि सुसंगत तथा व्यवहार्य मूल्य प्रणाली को ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से लागू किया जाय, जो जीवन के प्रति तर्कसंगत, वैज्ञानिक और नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित हों। इस धारणा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि, "किसी भी राष्ट्र के जीवन की गुणवत्ता तथा उसके विकास की गति वैचारिक वातावरण, इतिहास, संस्कृति, परम्परा और मूल्यों के व्यापक ज्ञान तथा जीवन की भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं पर विजय प्राप्त करने के लिए मानवीय क्षमता में उनके विश्वास की भावना पर निर्भर रहती है। समग्र वातावरण की गुणवत्ता को निर्धारित करने के लिए उच्चतर शिक्षा तथा इससे विकसित प्रबुद्ध वर्ग की भूमिका का विशेष महत्व है।"

इस तथ्य से कोई शायद ही इन्कार करे कि शिक्षा नीति की जड़ता से हमारे विश्वविद्यालय निरुद्देश्य, कुंठित और अरुचिपूर्ण बेरोजगार ही पैदा करते रहे हैं और दुष्परिणाम सामने हैं जो उपर्युक्त अवधारणा के विरुद्ध जाता है। यहां इस तथ्य को कहने का कोई विशेष लाभ नहीं है कि भारत में स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा में अपने अत्युत्तम तरीकों से विद्वान, इंजीनियर, तकनीशियन, डाक्टर तथा उच्च कोटि के प्रबन्ध कर्मियों को तैयार किया है जिसकी तुलना विश्व के श्रेष्ठतम विश्वविद्यालयों से तैयार हुए अच्छे विद्वानों से की जा सकती है, किन्तु यह भी सच है कि इस कोटि के थोड़े से

लोगों की तुलना में काफी संख्या में उच्च शिक्षा की संस्थाओं से ऐसे लोग निकलते हैं, जिनके पास थोड़ा बहुत पुस्तकीय ज्ञान और एक डिग्री होती है, लेकिन उनमें स्वत: अध्ययन की बहुत कम क्षमता, कमजोर भाषा तथा सीमित संप्रेषण क्षमता और सीमित विश्वदृष्टिकोण होता है तथा उनमें किसी प्रकार की सामाजिक तथा राष्ट्रीय जिम्मेदारी की प्रवृत्ति का भी अभाव रहता है ।"

सरकारी दस्तावेज के इन तीन बिन्दुओं से गुजर कर हम इन परिणामों तक पहुँचे हैं कि सरकार की कुछ चिन्ताओं में से एक मुख्य चिन्ता ऐसी शिक्षा प्रणाली के लिए है जो उच्च शिक्षा के स्तर पर ऐसे ग्रेजुएट तैयार कर सके, जिनमें स्वत: अध्ययन की क्षमता, अच्छा भाषा ज्ञान, संप्रेषण की प्रौढ़ता, जीवन के प्रति तर्कसंगत, वैज्ञानिक और नैतिक दृष्टिकोण हो और इस प्रकार जो राष्ट्र में एक स्वस्थ वैचारिक, सांस्कृतिक वातावरण की सर्जना कर सके ।

हमारे विचार से इस चिन्ता का एक विश्वसनीय समाधान हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था के माध्यम से हो सकता है । आज इस अध्ययन की जो दशा और दिशा है वह संतोषप्रद नहीं है । इस आलेख में इन्हीं स्थितियों की छानबीन कर एक सार्थक दिशा की ओर बढ़ने की संकेतों का प्रयास किया गया है ।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन मुख्यत: दो स्तरों पर होता है- एक-भाषा के स्तर पर और दूसरा- साहित्य के स्तर पर । इसके अलावा उच्चतर शिक्षा में दोनों के अनुसंधान के स्तर भी ।

॥ ॥

पहले, भाषा के रूप में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन को लें ।

अधिकांश लोग हिन्दी पढ़ने का मतलब सिर्फ कबीर, सूर, तुलसी की "कवितायें" पढ़ना या उपन्यास-कहानी पढ़ना मानते हैं । सचमुच में वे यह नहीं जानते और मानते कि जिस माध्यम से हम या हमारे अधिकांश विद्यार्थी सोचते, पढ़ते, लिखते और बातचीत करते हैं वह भी हिन्दी है । भाषा के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था अन्य विषयों के पाठ्यक्रम की रटंत प्रणाली से भिन्न होती है, लेकिन हम उसे अन्य विषयों की तरह लेते हैं । या फिर उस पर ध्यान

नहीं देते । यही कारण है कि हमारे विश्वविद्यालयों के अधिकांश स्नातकों की भाषा बड़ी कमजोर और भ्रष्ट रह जाती है । किसी भी अच्छे रोजगार के लिए प्राय: स्नातक उपाधि आवश्यक मानी जाती है । लेकिन, क्या हमारे वे स्नातक-उपाधिधारी अपने अर्जित ज्ञान की अभिव्यक्ति मौखिक या लिखित रूप में किसी शुद्ध भाषा में करने में पूर्ण सक्षम होते हैं । हिन्दी या अंग्रेजी किसी भी एक भाषा में ही सही । इसका उत्तर निश्चित ही संतोषप्रद नहीं है ।

तो हमारा, सुझाव है कि स्नातक स्तर पर भाषा के विद्यार्थी को कबीर, सूर, तुलसी की कविता या उपन्यास कहानी के स्थान पर अनिवार्यत: ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जो उसमें अभिव्यक्ति क्षमता के साथ-साथ शुद्ध भाषा की समझ और प्रयोग शक्ति विकसित कर सके । सभी तरह के पत्र-लेखन की विधि, प्रशासनिक, तकनीकी, चिकित्सा विज्ञान, वाणिज्य इत्यादि विषयक शब्दावली का ज्ञान, अनुवाद, कला, टिप्पणी और उनका लेखन अपने विचारों को तर्कसंगत ढंग से मुहावरे युक्त, संयत भाषा में व्यक्त करने की क्षमता- जो निबन्धों, संक्षेपीकरण और विस्तारण से आ सकती है, इत्यादि का व्यावहारिक ज्ञान और अभ्यास उन्हें अनिवार्यत: कराया जाना चाहिए ।

नि:संदेह ऐसा पाठ्यक्रम स्नातकों को रोजगार से जोड़ेगा । उन्हें रोजगारों के योग्य बनायेगा । इसलिए हमारे विचार से इस पाठ्यक्रम को अनिवार्य बनाने की आवश्यकता है, तभी हमारे स्नातक राजभाषा विभाग की कार्यप्रणाली के अनुरूप अपने को तैयार कर पायेंगे, हिन्दी अधिकारी सुयोग्य अनुवादक, सलाहकार, इत्यादि पदों के उपयुक्त हो सकेंगे । इस पाठ्यक्रम के निर्धारण के लिए आवश्यक है कि विभिन्न निकायों से उनकी आवश्यकतायें जानी जायें और तदनुकूल उन योग्यताओं और क्षमताओं के विकास पर ध्यान दिया जाय । यथा-बैंक, विज्ञान अकादमी, दूतावास विभिन्न सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी प्रतिष्ठानों आदि में किस तरह के काम हिन्दी में होते और हो सकते हैं । उनके लिए एक उम्मीदवार में क्या-क्या योग्यतायें वे चाहते हैं । चुने जाने पर उस व्यक्ति को किस प्रकृति का कार्य सौंपा जायेगा इत्यादि बातों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम बनाने की आवश्यकता है ।

[2]

अब दूसरा स्तर लें, अर्थात् हिन्दी का "साहित्य" के रूप में अध्ययन ।

हिन्दी ही क्या किसी भी भाषा के साहित्य के सम्बन्ध में कुछ लोग पूछ सकते हैं कि आखिर उसमें हम पढ़ाते क्या हैं । उनसे यह पूछना चाहिये कि वे पढ़वाना क्या चाहते हैं ।

दरअसल उनका प्रश्न स्वाभाविक ही है, क्योंकि उनकी मजबूरी यह है कि वे यह ठीक तरह नहीं जानते कि साहित्य क्या है । साहित्य क्यों लिखा जाता है । साहित्य क्यों पढ़ा जाता है और साहित्य में क्या और उसे कैसे पढ़ाया जाना चाहिए । उनके लिए बहुत संक्षेप में यह संकेत पर्याप्त है कि साहित्य न सिर्फ एक कला है, अपितु समाज में मानव मूल्यों को स्थापित करने, मानव को मानव बनाये रखने, मानवीय संवेदनाओं को निरन्तर परिष्कृत कर समाजित-राष्ट्रीय अखण्डता कायम रखने जैसे उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है । साहित्य पढ़ना और उसे पढ़ाना- ये दोनों अलग ढंग के कार्य हैं । साहित्य पढ़ने का एक सीधा-सीधा कारण हमें किसी भी साहित्य के सामान्य पाठक की नजर में यह मिल सकता है कि साहित्य भावों के दबावों से मुक्ति देता है । किसी पाठक या दर्शक को उसी तरह से मुक्ति या राहत मिलती है जैसे लेखक को । उसकी भावनाओं का एक संगम बिन्दु मिल जाता है और इसके कारण अपने सौन्दर्यानुभव के अंत तक आते-आते उसका चित शांत और निरुद्वेग हो जाता है । लेकिन यह विवादास्पद है । क्योंकि प्रश्न उठ सकता है कि साहित्य हमें भावों से मुक्ति देता है या उल्टे हमें उत्तेजित करता है । समग्रत: यह सही कि किसी रूप में सही, साहित्य हमारे भावों का पोषाण करता है । लेकिन हमारी समस्या यह है कि साहित्य में क्या और उसमें पढ़ाया कैसे जाय ।

इस समस्या का पहला प्रश्न तो यही है कि क्या साहित्य पढ़ाया जा सकता है ।

25 जुलाई, 1968 के "टाइम्स लिटरेरी सप्लिमेंट" के सम्पादक ने कहा था कि हमारे विश्वविद्यालयों में साहित्यिक अध्ययन का सम्पूर्ण विकास केन्द्रीय संशय से आक्रान्त रहा है, फलस्वरूप जो शिक्षा व्यवस्था निर्मित हुई है उसके मूल में उपयोगितावाद की शक्तियों के साथ एक अतृप्तिकर समझौता है ।

जब पहली बार हिन्दी साहित्य ने विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के लिए मान्यता प्राप्त की थी, तब भी यह सवाल जरूर उठा होगा । मान्यता मिलने पर विश्वविद्यालयों पर दायित्व बढ़ गया कि वे अन्य विषयों की तरह हिन्दी साहित्य को भी एक विषय के रूप में इसके पढ़ाने की व्यवस्था करें । लेकिन, इस संशय को अपने मन में ही दबाये हुए कि क्या इस तन्त्र में साहित्य को साहित्य के रूप में पढ़ना-पढ़ाना संभव है । इसे पढ़ाया जाता रहा और स्थिति यह है कि विश्वविद्यालय की परिधि में हिन्दी साहित्य नहीं बल्कि अन्य विषयों की तरह एक "विषय" है और अपनी उपयोगिता के लिए दूसरे विषयों की होड़ में उसे अधिक से अधिक इस शिक्षातंत्र का अनुरोध स्वीकार करना पड़ रहा है । इस प्रक्रिया में नि:संदेह उसकी "साहित्यकता" लुप्त होती जा रही है । रोजगार से जुड़ जाने के कारण उपयोगितावाद के इस दबाव में हिन्दी साहित्य की शिक्षा का बचना बिल्कुल असंभव तो नहीं, हाँ कठिन अवश्य है । आज हिन्दी में अधिकांश विद्यार्थी एम०ए० करने आते हैं तो इस लिए नहीं कि उनमें साहित्य के प्रति रुचि है, उनमें सृजनात्मक क्षमता है, बल्कि इसलिए कि शायद हिन्दी में एम०ए० करना कुछ आसान होगा या अच्छी श्रेणी आसानी से मिल जायेगी । (भले ही वे भ्रम का शिकार हैं) और कुछ नहीं तो, नौकरी तो कहीं-न कहीं मिल जायेगी । निश्चित है कि ऐसी दशा में परीक्षा सबसे महत्वपूर्ण हो जायेगी।

ऐसे में आप पाठ्यक्रम में क्या रद्दोबदल करेंगे ।

आधुनिक बनाने के लिए, यदि आप चाहें कि विद्यार्थियों को ऐसा पाठ्यक्रम मिले कि उनमें आधुनिक दृष्टि विकसित हो, तो इस परीक्षा-तंत्र के चलते कितना ही आधुनिक पाठ्यक्रम रख दें, परम्परा की जर्जरता से ग्रस्त अध्यापक भी पुराने ढर्रे से पढ़ायेंगे और स्वयं विद्यार्थी भी उसमें रुचि नहीं लेंगे । वे तो उतना ही पढ़ना चाहेंगे, जितने में वे परीक्षा पास कर सकें, उन्हें आधुनिक पाठ्यक्रम में से ज्यादा कुछ लेना देना नहीं रहेगा । हमारे तथा कथित प्रोफेसर भी वही लिखायेंगे-पढ़ायेंगे कि महत्वपूर्ण "मसाला" पढ़कर उनके छात्र पास हो सकें । यहाँ निश्चित् रूप से यह निर्धारित करना कठिन है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति के इस "दुष्टचक्र" में इस "कामचलाऊ" पाठन-पाठन के लिए उत्तरदायी कौन है -पाठ्यक्रम या अध्यापन- शैली या परीक्षा प्रणाली या आजीविका ।....

आश्चर्य है कि छुटपुट असंतोष के बाद भी, पता नहीं किस धैर्य से इस दुष्टचक्र" में ही विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य के अध्यापन का कार्य चल रहा है। पता नहीं कैसे हिन्दी का एक प्राध्यापक इस दोहरी जिम्मेदारी का निर्वाह कर रहा है कि -"एक उपयोगी विषय के रूप में हिन्दी की संघटना करना और हिन्दी साहित्य के विकास के लिए उपर्युक्त वातावरण के निर्माण में योग देने वाली साहित्यिक संवेदना का प्रसाद" (जैन, 1980)

हमारी निश्चित धारणा है कि पाठ्यक्रम में आधुनिक या समकालीन साहित्य रख देने मात्र से ही विद्यार्थी को आधुनिक दृष्टि नहीं मिल पाती। क्योंकि, आधुनिकता का अर्थ केवल समकालीन होना नहीं है, इसका सम्बन्ध उस नयी चेतना और दृष्टि से है, जो परम्परा को फिर-फिर नया देखती है। इसके लिए आवश्यक है कि हिन्दी साहित्य का अध्ययन उसकी पूरी निरन्तरता में किया जाय। उसका मूल्यांकन नयी दृष्टि से किया जाय। अपनी परम्परा को, अपनी सांस्कृतिक विरासत को समझे बिना आधुनिक नहीं हुआ जा सकता। यदि एक सिरे पर प्राचीन या मध्यकालीन साहित्य रखेंगे, दूसरे छोर पर आधुनिक साहित्य और दोनों के बीच शून्य, तो यह तय है कि उस शून्य को भरे बिना हम साहित्य को उसकी समग्रता में पढ़ नहीं सकते और इसके साथ ही यह भी है कि प्राचीन साहित्य को यदि आधुनिकता की दृष्टि से न पढ़ा जायेगा तो प्राचीन या मध्यकालीन बोध को ही लेकर निकलने वाला हमारा विद्यार्थी आधुनिक दुनिया में अपने को अजनबी और मुसाफिर पायेगा। इसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व अध्यापकों की अध्यापन शैली पर भी है। उन्हें अपनी दृष्टि बदलनी पड़ेगी। आधुनिकता सम्पन्न दृष्टि, साहित्यिक आलोचना की पूरी प्रक्रिया, जीवन मूल्यों के विश्लेषण और अपनी परम्परा के विकास को वर्तमान ज्ञान के नये क्षितिजों के तारतम्य में देखना- ये कुछ आवश्यक तत्व हैं, जो अध्यापन के लिए औजार का काम करेंगे। निःसंदेह तभी, साहित्य का पोषण और साहित्य सर्जना, साहित्यिक रुचि के लिए एक वातावरण निर्मित हो सकेगा, जो ध्यान दें तो विद्यार्थियों की कुंठित होती प्रज्ञा में मौजूद है। अपने देश के साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता के इस पहलू में यह चिन्ता भी निहित है कि इक्कीसवीं शादी के टैक्नोलाजी के सपने सुखद अवश्य हैं, लेकिन कहीं ऐसा न हो कि

अतीत और आगामी संस्कृतियों के बीच के संक्रमण में हम अपना कुछ बहुमूल्य खोंदे । ऊपर-ऊपर हम कमप्यूटर युग में प्रवेश पाने का छल करते रहे और भीतर से अपनी सांस्कृतिक विरासत से शून्य होते चले जायें । हमारे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि हम अपनी भौतिक विकास रोक दें, या चौदहवीं सदी की तरह रहें, बल्कि, हमारा आग्रह इतना ही है कि जैसे हम पीछे विकास करते आये हैं, उस विकासगामी परम्परा को और आगे बढ़ाये । हर क्षेत्र में आगे पढ़ायें । इसके लिए पुनः अपनी सांस्कृतिक परम्परा को पहचानने और परखाने पर जोर देना चाहेंगे और चाहेंगे कि क्षेत्रीय साहित्य और संस्कृति को हिन्दी साहित्य के साथ अनिवार्यतः पढ़ाया जाना चाहिए ।

॥3॥

अब शोध स्तर की बात उठाते हैं । संक्षेप में ।

यह बात बुरी तरह अनुभव की जाती रही है कि आज शोध कार्य असंतोषजनक या निम्न स्तरीय हो रहा है । दरअसल यह स्थिति अकेले हिन्दी के शोध की ही नहीं कहीं जा सकती । रसायन विज्ञान, शिक्षा शास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास या भूगोल आदि विषयों में क्या कम शोध कार्य हो रहा है ? और जो हो रहा है, वह क्या बहुत स्तरीय ही है ? विकसित प्रयोगशालायें हैं नहीं और विज्ञान के विषय के लोग खुश हैं कि उनके यहां बहुत बढ़िया शोधकार्य हो रहा है । बढ़िया इसलिए कि वह हिन्दी का नहीं संस्कृत का नहीं, इतिहास का नहीं- "विज्ञान" का है ।

किसी भी विषय में व्यापक रूप से शोध कार्य होना बुरी बात नहीं । इससे तो वह विषय समृद्ध होता है, बुरी बात है स्तरीय शोध का न होना । ईमानदारी से देखें तो सब विषयों में कुल कितने शोध कार्य ऐसे होते हैं, जिनका देश या विदेशों में नोटिस लिया जाता है ।

वस्तुस्थिति यह है कि शोध की विषयानुकूल वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण कम किया जा रहा है, विशेष रूप से हिन्दी में । परम्परागत ढ़ग से विवेचन कर, तथ्य एकत्रित कर, मत उद्धृत कर एक भारी भरकम शोध प्रबन्ध लिखा कर जमा कर देना ही जैसे शोध का पर्याप्त मान लिया गया है । यह धारणा बदलनी होगी और इसके लिए अन्य विषयों से तालमेल बिठा कर शोध प्रक्रिया को

सही समय एम०ए० स्तर पर ही विद्यार्थियों में विकसित करनी पड़ेगी ।

हमारे विचार से शोध कर्ताओं में एक तो गंभीर शोध की प्रवृत्ति प्राय: विकसित नहीं हो पाती, दूसरे उन्हें उनके शोध विषय से सम्बन्धित समूची विषय सामग्री नहीं मिल पाती । निर्देशकों को भी कई बार सभी विषयों की पूरी विषय सामग्री का ज्ञान नहीं होता । ऐसे में अंधो-अंधा ठेलिया दोउ कूप परन्त" का सा परिणाम होता है ।

रोजगार से जुड़े जाने और बैठे ठाले क्या करें, पी०एच-डी० ही कर लें । जैसी मानसिकता के कारण गंभीर शोध नहीं हो पा रहा है । लेकिन यही कारण एकमात्र नहीं है । कुशल निर्देशन और विषय सामग्री का उपलब्ध न हो पाना भी गंभीर शोध न हो पाने के कारणों में से है । पहले कारणों पर हमारा प्रत्यक्ष कोई वश नहीं हैं, बाद के कारणों पर नियंत्रण पाया जा सकता है । कुशल निर्देशन देने के लिए हमें गंभीर होना पड़ेगा । पी०एच-डी० कितने पैदा किये (नम्बर आफ पी०एच-डी० प्रोड्यूस्ड) पर ध्यान न दे कर, हमें ध्यान देना चाहिए कि कितना शोध कार्य ऐसा कराया है जिससे हम गंभीरता और ईमानदारी से जुड़ कर करा पाये हैं । हमने ऐसा क्या उद्घाटित किया है, जिसे हम लोगों को साफ तौर पर बता सकते हैं । उन तक इस विशिष्ठ ज्ञानोपब्धि को पहुँचा कर संतोष कर सकते हैं ।

अधिक विस्तार में न जाकर हम विनम्रतापूर्वक दो सुझाव देना चाहते हैं । एक तो यह कि हिन्दी में शोध-पत्रिकाओं का अभाव है । सच तो यह है कि जो इनी गिनी शोध-पत्रिकायें है भी, उनमें प्राय: आलोचनात्मक या सामान्य सूचनात्मक लेख ही छपते हैं । शोध पत्र-लेखन की प्रक्रिया विज्ञान के शोध छात्रों के अनुरूप हमें शोधकर्ताओं को बतानी चाहिये और जैसे विज्ञान या मानविकी के अन्य विषयों में शोध पत्र प्रकाशित होते हैं, उसी तरह से हिन्दी में भी वे जाँच परख कर प्रकाशित होने चाहिये । यही नहीं एक वर्ष में जितने शोध पत्र और अच्छे आलोचनात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हों, वर्ष के अन्त में उनकी एक सामान्य सूची और संक्षिप्त विवरण प्रत्येक पत्रिका में प्रकाशित हो, इससे शोधकर्ताओं को विषय-सामग्री उपलब्ध करने में सुविधा रहेगी ।

दूसरा सुझाव यह है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या कोई स्वतन्त्र शोध संस्थान शोध का एकमात्र नियंत्रक रहे । वहीं से सभी विषयों का पंजीकरण हो । शोध कार्य के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या वह केन्द्रीय शोध संस्थान अलग-अलग विश्वविद्यालयों, को विषय-विशेषज्ञता, उस विश्वविद्यालय के क्षेत्र में उपलब्ध विषय-सामग्री, पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि की दृष्टि से शोध केन्द्र निर्धारित करे । शोध कर्ता कहीं भी पंजीकृत हो, वह अनिवार्यत: उस केन्द्र पर जाये और अध्ययन करे । कार्योपरान्त शोध प्रबन्ध को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में जमा हो । हम समझते हैं कि इससे किसी सीमा तक स्थिति में सुधार हो सकेगा । हिन्दी में ही नहीं अन्य विषयों में भी यह व्यवस्था लागू हो जानी चाहिये ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शोध छात्रवृत्तियां देने के लिए संयुक्त परीक्षा की शुरूआत करके एक अच्छा काम किया है । इससे अगले चरण के रूप में यदि वह उपर्युक्त प्रक्रिया को स्वीकार करले तो श्रेयष्कर होगा । इस तरह से अच्छे शोध केन्द्र अलग-अलग विषयों में विकसित हो सकेंगे ।

विश्वविद्यालय शिक्षा में गुणात्मक ह्रास समस्या एवं समाधान हेतु सुझाव

- डॉ० जे०पी० पचौरी,
प्रवक्ता-राजनीति-शास्त्र

स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे देश में और कुछ हुआ हो चाहे न हुआ हो, परन्तु राजनैतिक जागरूकता इतनी अधिक आ गई है कि उससे हमारे जीवन का हर क्षेत्र त्रस्त और आक्रान्त हो उठा है । क्योंकि सर्वत्र राजनीति प्रमुख हो गई है । जीवन क्षेत्र का उद्देश्य और विकास, इत्यादि गौण हो गये हैं । भारतीय विश्वविद्यालय भी इस स्थिति से अलग नहीं हैं, इनमें भी राजनीति से अपना घर बना लिया है ।

वर्तमान में यदि भारतीय प्रजातन्त्र में उच्च शिक्षा की स्थिति को देखें, तो ज्ञात होता है कि यहां उच्च शिक्षा प्रमुख रूप से राजनैतिक दुरावों व षाड्यन्त्रों का शिकार बनती जा रही है । भारत में उच्च शिक्षा पर राजनीतिक दबाव एवं प्रभाव अधिक हो चुका है । उसे देखकर लगता है कि यहां शिक्षा का अर्थ तथा मूल्य पूर्णतः राजनीति के अंग बनकर रह गये हैं । राजनीतिक दबावों ने योग्य व्यक्तियों को पीछे धकेल दिया है तथा ऐसे व्यक्ति आज शिक्षा के नेता तथा निर्माता बन बैठे हैं, जिन्होंने कभी शिक्षा का अर्थ समझने का कष्ट नहीं किया है । स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में जैसे-जैसे राजनैतिक भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे उच्च शिक्षा पर भी उसका प्रभाव पड़ता जा रहा है ।

विश्वविद्यालय का उद्देश्य है नागरिकों तथा छात्रों को उच्च शिक्षा को उपलब्ध कराना, ज्ञान का प्रसार करना, अनुसंधान और अन्वेषाण को प्रोत्साहन देना तथा उनके समाज तथा देश को सभी दृष्टियों से समृद्ध तथा उन्नत करना । उच्च शिक्षा के उच्च उद्देश्य हैं । किन्तु जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, सम्प्रदायवाद, भाई-भतीजावाद, स्वार्थपरता तथा व्यक्तिवाद की भावना से सभी उद्देश्य धूमिल हो गये हैं तथा विश्वविद्यालय शिक्षा का गुणात्मक ह्रास होता जा रहा है ।

उच्च शिक्षा में गुणात्मक ह्रास को आज सभी लोगों द्वारा स्वीकार किया जाता है । भारत सरकार द्वारा अभी हाल में ही शिक्षा नीति के

सम्बन्धा में जो दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है उसमें भी इसे स्वीकार किया गया है । उच्च शिक्षा में गुणात्मक विकास लाने के लिए कुछ सुझाव पर्याप्त नहीं प्रतीत होते हैं । आज अनेक विश्वविद्यालय तथा कालेज जातिवाद, क्षेत्रीयवाद तथा गुटबन्दी फैलाने में बदनाम हो रहे हैं । आज विश्वविद्यालयों की उपलब्धि का मूल्यांकन अनुसंधान की गुणवत्ता या छात्रों की योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि इस आधार पर किया जाता है कि समय पर वह विश्वविद्यालय परीक्षायें सम्पन्न कर देता है या नहीं ।

भ्रष्टाचार के फलस्वरूप उच्च शिक्षा का ढ़ाँचा अन्दर से पूर्णरूप से खोखला हो चुका है । उच्च शिक्षा के हर स्तर पर हर तरह से भ्रष्टाचार गहराई के साथ बैठ गया है । उच्च शिक्षा के प्रशासनिक, शैक्षिक और संरचनात्मक ढ़ाँचे में अनेक ऐसी समस्यायें हैं । शिक्षा में गुणात्मक विकास के लिये इन समस्याओं का समाधान खोखला अवश्य है । लेकिन सबसे पहले उस भ्रष्टाचार को समाप्त करना जरूरी है जो इन समस्त समस्याओं के मूल में है । आज शिक्षातंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना सबसे महत्वपूर्ण एवं सर्वप्रथम आवश्यकता है ।

उच्च शिक्षा में गुणात्मक ह्रास की प्रक्रिया को प्रारम्भ विश्वविद्यालयों की स्थापना के साथ ही शुरू हो जाती है । अधिकतर विश्वविद्यालयों की स्थापना शैक्षिक जरूरत पर ठीक तरह से विचार करने के पश्चात नहीं की जाती है अपितु क्षेत्रीय आन्दोलनों व राजनैतिक दृष्टि को ध्यान में रखकर की जाती है । इसका परिणाम यह होता है कि ये विश्वविद्यालय लम्बे समय तक वित्त, अध्यापकों व संसाधनों की कमी में चलते रहते हैं । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम आवश्यकताओं को ये विश्वविद्यालय लम्बे समय तक पूरा नहीं कर पाते हैं । जिसके फलस्वरूप इन विश्वविद्यालयों को आयोग से अनुदान नहीं मिल पाता है । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पर ऐसे विश्वविद्यालयों द्वारा बिना निर्धारित न्यूनतम आवश्यकताओं को प्राप्त किये अनुदान देने हेतु राज्य सरकारों द्वारा दबाव डाला जाता है, इसका परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालयों को मान्यता देने के लिए अनेक रियायतें देनी पड़ती हैं । इतने लम्बे समय तक इन विश्वविद्यालयों की शिक्षा का स्तर गिर जाता है तथा यह

प्रक्रिया आगे भी जारी रहती है । इसलिए सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि विश्वविद्यालय व कालेजों की स्थापना शैक्षिक जरूरत पर ठीक से विचार कर की जाय । जिससे आगे आने वाली समस्याओं से बचा जा सके ।

दूसरी समस्या विश्वविद्यालय प्रशासन पर राजनैतिक नेताओं का हस्तक्षेप की है । वैसे तो विश्वविद्यालय के गठन में ही राजनैतिक नेताओं अथवा मंत्रियों का हाथ रहता है । लेकिन विश्वविद्यालयों में उप कुलपतियों की नियुक्ति तो पूर्णतया राज्य मंत्रिमण्डल द्वारा की जाती है । यद्यपि कहीं-कहीं उपकुलपति की नियुक्ति के लिए तीन व्यक्तियों की समिति गठित की जाती है, जिसके सदस्य कहने के लिए लोकतन्त्रीय आधार पर विश्वविद्यालय की सीनेट द्वारा मनोनीत किये जाते हैं, किन्तु वर्चस्व कुलपति या राज्यपाल का ही होता है । मंदिरों तक जिसकी पहुँच होती है वही उपकुलपति हो जाता है जो उनकी कृपा से उपकृत होने के लिए विश्वविद्यालयों में चपरासी से लेकर प्रोफेसर तक की नियुक्ति उन्हीं के संकेत पर करने के लिए विवश हो जाता है । उसी प्रणाली में अपने निजी व्यक्तियों के लिए भी स्थान बना लेता है । योग्यता, अनुभव और अनुसंधान कार्य एक ओर रह जाते हैं तथा राजनैतिक नेताओं या स्वयं कुलपतियों के कृपा पात्र शिक्षक उच्च पदों पर नियुक्त हो जाते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि कृपापात्र लोग तो अच्छी या वांच्छित शिक्षा प्रदान कर ही नहीं पाते हैं । साथ ही योग्य व अनुभवी शिक्षक कुण्ठाग्रस्त होने के कारण उत्साह भंग होने से चाहते हुए भी अपनी पूर्ण शक्ति और प्रतिभा का उपयोग नहीं कर पाते । फलत: शिक्षा का स्तर गिरता चला जा रहा है । इसलिए उच्च शिक्षा में राजनैतिक भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कुलपतियों की नियुक्ति सरकार द्वारा नहीं की जानी चाहिए । साथ ही कुलपति के पद पर योग्य अनुभवी शिक्षाविदों को ही नियुक्त किया जाय । इसके लिए योग्यतायें निश्चित् की जायं । उस क्षेत्र के व्यक्ति को कुलपति के पद पर नियुक्त न किया जाय जहाँ विश्वविद्यालय स्थित हो । इसके लिए बेहतर तो यह होगा कि योग्य अनुभवी शिक्षकों को उपकुलपति के पद पर अपने राज्य से बाहर नियुक्त किया जाय । इससे जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, भाई-भतीजावाद नहीं पनपेगा । प्राय: यह देखा जाता है कि जिस जाति का कुलपति होता है उस जाति के अध्यापक, कर्मचारी कुलपति से अपना जातिगत सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते हैं । इससे

जाति के आधार पर विश्वविद्यालयों में गुटों का निर्माण होता है । जो कि शिक्षा के गुणात्मक ह्रास के लिए बहुत हद तक जिम्मेदार है । स्वार्थी, भ्रष्ट व तिकड़मबाज शिक्षक व कर्मचारियों का अधिकतम समय गुट निर्माण व शक्ति प्रदर्शन में लगा रहता है । इस जातिगत राजनीति का परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालयों की प्रबन्ध व्यवस्था के व्यक्तियों में जातिगत व क्षेत्रीय दलबन्दी बनी रहती है, जो छात्रों को भी प्रभावित करती है । शिक्षा के स्तर को हीनतर बनाती चली जा रही है । प्राय: प्रत्येक विश्वविद्यालय में यह देखा जा सकता है कि कुछ अध्यापक जिनमें प्राध्यापक, उपाचार्य व आचार्य सभी सम्मिलित हैं, अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ऐसे छात्रों को भी पालते हैं, जो उनके उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता करते हैं । इन छात्रों का शिक्षा ग्रहण करने से कोई मतलब नहीं होता है । इसका परिणाम यह होता है कि इन छात्रों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से उन अध्यापकों द्वारा अच्छे अंक प्राप्त करने में मदद की जाती है । राजनीति के इस दूषित प्रभाव का ही परिणाम है कि ऐसे छात्र परीक्षा में नकल करने के लिए उपस्थित कम होने पर भी परीक्षा में बैठने के लिए परीक्षा में सुविधा प्रदान करने के लिए, सरल प्रश्नपत्रों के निर्माण के लिये आन्दोलन करते हैं । मांगे पूरी न होने पर घिराव करते हैं । विघटनकारी, हिंसात्मक उपायों को भी अपनाते हैं । कहीं भी छात्रों के आन्दोलन इसलिए नहीं होते देखे गये हैं कि उन्हें योग्य अनुभवी अध्यापक मिलें । उन्हें आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित उत्तम प्रयोगशालायें मिले । नवीनतम प्रकाशनों से पूर्ण पुस्तकालय हो । हवादार कक्षायें हों । क्रीड़ा की समुचित सुविधायें उपलब्ध हों । विश्वविद्यालय अध्यापकों ने विशेष रूप से जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, सम्प्रदायवाद व भाई भतीजावाद को बढ़ावा दिया है । ऐसी प्रबलतम भावना खुले रूप में जितनी विश्वविद्यालय के बुद्धिजीवियों में देखने में आती है उतनी शायद समाज के अन्य किसी वर्ग में न हो । यह भी उल्लेखनीय है कि इन बुद्धिजीवियों का उद्देश्य अपनी जाति, क्षेत्र या सम्प्रदाय का कल्याण करना नहीं है । ये बुद्धिजीवी जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, व सम्प्रदायवाद को अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये बढ़ाते हैं तथा अपने हितों के लिए इनका प्रयोग करते हैं । आज इस देश में न तो जातिवाद है न क्षेत्रीयवाद है । न सम्प्रदायवाद है । अगर कोई वाद है तो वह है व्यक्तिवाद व स्वार्थवाद । हमारा इतना नैतिक पतन हो

हो चुका है कि हम छोटे से छोटे उपकार का लाभ उठा कर अपने स्वार्थों की पूर्ति कर लेना चाहते हैं, भले ही हमारे कार्यों से जाति का, क्षेत्र का, सम्प्रदाय व देश का कितना ही अहित क्यों न होता हो ।

उच्च शिक्षा में गुणात्मक ह्रास के लिए जहां एक ओर कुलपतियों की नियुक्ति की प्रक्रिया का आधार उचित नहीं है, वहीं दूसरी ओर अध्यापकों की नियुक्ति में भी लगभग वहीं स्थिति है । हम सभी अच्छी तरह जानते हैं कि आज ऐसे अनेक लोग उन स्थानों पर बैठे हैं, जहां उन्हें नहीं होना चाहिए था । उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भले ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा योग्यतायें निर्धारित कर दी गई हों, लेकिन जिस प्रकार से नियुक्ति समितियां गठित की जाती हैं तथा उनमें कम योग्य व्यक्तियों को जिन-जिन तरीकों से नियुक्त कराया जाता है । इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि यदि हमें शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक वृद्धि करनी है तो इसके लिए हमें योग्य व्यक्ति चाहिए, जिसके लिए हमें वर्तमान नियुक्ति प्रक्रिया को निश्चय ही बदलना होगा ।

उच्च शिक्षा का तब तक कोई मूल्य नहीं है, जब तक इसके माध्यम में श्रेष्ठता का चयन न किया जा सके । यदि सही और न्यायसंगत सम्बन्ध नहीं तो शिक्षा निरर्थक है ।

इस विश्लेषण के आधार पर गुणात्मक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. कालेज व विश्वविद्यालयों पर से अनावश्यक राजनैतिक हस्तक्षेप को कम करने के प्रयास किये जाने चाहिये ।

2. विश्वविद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि कालेज व विश्वविद्यालयों की स्थापना शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की जाय । कालेज व विश्वविद्यालयों के खोलने से पूर्व इनके लिए समुचित मात्रा में संसाधनों को जुटाया जाय ।

योग्य, अनुभवी शिक्षाविदों, जिनका जीवन शिक्षा के क्षेत्र में व्यतीत हुआ हो, साथ ही जो योग्य प्रशासनिक सेवा में भी रहे हों तथा जिनमें कुछ कर सकने की क्षमता हो, को ही कुलपति के पद पर नियुक्त किया जाय । राष्ट्रीय

स्तर पर ऐसे व्यक्तियों का पैनल बनाया जाय तथा उसी पैनल से व्यक्तियों की नियुक्ति की जाय । किसी भी व्यक्ति को अपने क्षेत्र में कुलपति के पद पर नियुक्त न किया जाय, अपने राज्य से बाहर ही नियुक्त किया जाय ।

3. तीसरे स्तर पर उच्च शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अध्यापक की है । इसलिए अध्यापक के पद पर योग्य व्यक्तियों का चुनाव किया जाय । चुनाव राष्ट्रीय स्तर पर किया जाय । अध्यापक के पद पर नियुक्ति हेतु भारतीय प्रशासनिक सेवा की तरह प्रतियोगात्मक परीक्षा ली जाय । इस प्रक्रिया से शिक्षा के क्षेत्र में काफी लोग आ सकेंगे, जो योग्य हैं ।

अध्यापकों को कार्य करने के लिए उत्साहवर्धक वातावरण समान रूप से प्रदान किया जाय । साथ ही अध्यापक को वे समस्त सुविधायें तुरन्त दी जानी चाहिये। उनके कार्य करने की दशाओं में सुधार किया जाय । व तदर्थ रूप से अध्यापकों की नियुक्ति पर शीघ्र ही प्रतिबन्ध लगा दिया जाय ।

अध्यापकों को रहने के लिए मकान या किराया भत्ता तथा चिकित्सा सुविधायें पर्याप्त मात्रा में दी जाय । वे समस्त सुविधायें जो प्रशासनिक अधिकारियों को दी जाती हैं, प्रदान की जायं । विश्वविद्यालयों में पारिश्रमिक वाले पदों पर समान रूप से सभी अध्यापकों को अवसर प्रदान किये जायें, न कि कुछ ही लोगों को, साथ ही मेरा सुझाव है कि अध्यापक को समाज का सबसे अधिक वेतन पाने वाला व्यक्ति कर दिया जाय ।

4. उच्च शिक्षा में गुणवत्ता की कमी के लिए काफी हद तक छात्र संघ एवं अध्यापक संघ भी जिम्मेदार हैं । इसलिए छात्र संघ के चुनाव की पद्धति को बदला जाय । इसमें ऐसे योग्य छात्र आने चाहिए जो शिक्षा के लिए उचित वातावरण के निर्माण में सहयोग प्रदान करें । अध्यापक संघों की भूमिका भी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने में होनी चाहिये । अध्यापकों के संघ द्वारा सेमीनार, गोष्ठियां आदि का आयोजन कराया जाना चाहिए । इस कार्य के लिए विश्वविद्यालयों द्वारा भी सहायता दी जानी चाहिये ।

5. उच्च शिक्षा में गुणात्मक कमी के लिए वर्तमान परीक्षा प्रणाली भी जिम्मेदार है । इसलिए परीक्षा पद्धति को पूर्ण रूप से बदला जाय । परीक्षा पद्धति ऐसी हो, जिसमें अध्यापक व छात्र, दोनों को ही लगातार पढ़ना पड़े ।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए हम सभी को अपने-अपने स्तर से सहयोग से कर्तव्य की भावना से कार्य करना चाहिए । यह किसी एक व्यक्ति की जिम्मेदारी नहीं है लेकिन हम जिम्मेदारी से बच नहीं सकते हैं । इसलिए हम सब उच्च शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रयास करें ।

उच्च शिक्षा में वर्तमान मूल्यांकन की कमियां तथा उसे दूर करने हेतु सुझाव

-डॉ० एस०सी० जोशी एवं डॉ० जे०पी० पचौरी

समाज अपने उद्देश्यों के अनुरूप बालकों को शिक्षा देकर उसे एक योग्य नागरिक बनाने की अपेक्षा करता है। मानव जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा अनिवार्य है। चूँकि जीवन के लक्ष्यों में विभिन्नता पाई जाती है, इसलिए शिक्षा के लक्ष्यों में विभिन्नता आना स्वाभाविक है। शिक्षण संस्थायें छात्र को वर्षों भर शिक्षा देने के उपरान्त मूल्यांकन करती है कि शिक्षार्थी ने उस ज्ञान को किस सीमा तक ग्रहण किया है। इसी प्रक्रिया को नियमित ढंग से जारी रखने के लिए प्रतिवर्ष परीक्षा ली जाती है तथा छात्रों को दिये गये प्राप्तांकों के आधार पर यह मूल्यांकन किया जाता है कि छात्र ने सम्बन्धित विषय का कितना ज्ञान ग्रहण किया है। इस आधार पर छात्र को प्रदान किये गये अंकों के अनुसार श्रेणियां प्रदान की जाती हैं तथा उसे उत्तीर्ण व अनुत्तीर्ण घोषित किया जाता है।

वर्तमान समय में उच्च शिक्षा में मूल्यांकन पद्धति अत्यन्त दोषापूर्ण है। न तो परीक्षार्थी ही वस्तुनिष्ठता के आधार पर अपने प्राप्तांकों से सन्तुष्ट हो पाता है और न ही परीक्षणकर्ता दावे के साथ यह कह सकता है कि उसका मूल्यांकन सही है। यहीं नहीं अपितु यदि वही उत्तर पुस्तिका उसी परीक्षक से पुनः जंचवायी जाये तो 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक अंकों का अन्तर आ सकता है, जो छात्रों के पक्ष में न्यायसंगत नहीं है।

वर्तमान मूल्यांकन पद्धति में निम्नलिखित प्रमुख कमियां हैं-

1. निबन्धात्मक प्रश्न

परीक्षाओं में निबन्धात्मक प्रश्न दिये जाते हैं तथा छात्रों को विकल्प के आधार पर कुछ प्रश्न करने होते हैं। ऐसी परिस्थितियों का लाभ उन छात्रों को मिल जाता है, जो गैसे पेपर के आधार पर प्रश्न पढ़ कर डिग्री हासिल करने के अभ्यासी होते हैं। परन्तु पूरे पाठ्यक्रम का मनोयोग से अध्ययन करने वाला छात्र कभी-कभी ऐसे छात्रों से बहुत पीछे रह जाता है, जो दुर्भाग्यपूर्ण है।

निबन्धात्मक प्रश्नों का मूल्यांकन भी सही नहीं हो पाता है । उन पर दिये जाने वाले अंक अलग-अलग परीक्षकों द्वारा ही अलग-अलग नहीं होते, अपितु एक ही परीक्षक द्वारा अलग-अलग समय पर जाँचने पर भी अलग-अलग हो सकते हैं ।

2. वार्षिक परीक्षा के आधार पर मूल्यांकन

छात्रों के पूरे वर्ष भर की पढ़ाई के मूल्यांकन का एक मात्र आधार वार्षिक परीक्षा में किये 5-6 प्रश्न होते हैं । इसका प्रतिफल यह होता है कि पूरे वर्ष पढ़ने वाले छात्र से अधिक सफल वह छात्र होता है जो केवल परीक्षा के एक दो माह में ही पढ़ाई करता है । यह वर्ष भर कड़े परिश्रम करने वाले छात्र के साथ अन्याय है ।

3. विश्वविद्यालय के अन्दर ही मूल्यांकन का होना

एक परीक्षा केन्द्र की कापियों का विश्वविद्यालय के भीतर ही दूसरे महाविद्यालय में जांचा जाना एक तरह से मितव्ययी है । परन्तु दूसरी ओर यह प्रणाली भाई-भतीजावाद व भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । एक अध्यापक दूसरे अध्यापक से कह कर या पत्राचार कर अपने सम्बन्धित छात्र के अंक बढ़वा लेता है । जिसका प्रतिकूल प्रभाव ईमानदार, परिश्रमी एवं पहुँच न रखने वाले छात्रों पर पड़ता है ।

4. मूल्यांकन की कोई वस्तुनिष्ठता नहीं

वर्तमान समय में मूल्यांकन की कोई वस्तुनिष्ठता नहीं है, अपितु वह परीक्षक की मर्जी पर निर्भर है कि वह कितने प्रतिशत अंक देता है । यह परीक्षार्थी के उत्तर पर नहीं, अपितु परीक्षक की प्रकृति अर्थात् उदार अथवा अनुदार प्रकृति पर अधिक निर्भर करता है ।

5. मूल्यांकन को व्यवसाय के रूप में अपनाना

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में यह भी देखने में आ रहा है कि उत्तरपुस्तिकाओं को जाँचना धन कमाने का एक अच्छा साधन बन गया । तेजतर्रार तथा जान पहचान रखने वाले प्राध्यापकगण कई विश्वविद्यालयों के परीक्षक बन जाते हैं तथा वे इस माध्यम से हजारों रुपये कमा लेते हैं । उनका आशय इस महत्वपूर्ण कार्य को

गहराई में पैठ कर करने का नहीं होता अपितु उनका दृष्टिकोण केवल अर्थ प्राप्ति का होता है । वे कम से कम समय में अधिक से अधिक उत्तर पुस्तिकायें जांच कर अधिक से अधिक धन कमाना चाहते हैं ।

6. परीक्षकों द्वारा अन्य व्यक्तियों से कापियां जंचवाना

प्राय: परीक्षकों द्वारा अधिक व्यवस्तता के कारण कापियां अपने छात्रों अथवा कुछ कम या अधिक पढ़ी लिखी पत्नियों से जंचवा ली जाती है । ऐसी स्थिति में अथवा परीक्षक के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति इस मूल्यांकन का क्या महत्व समझ सकता है असम्बन्धित किसी व्यक्ति से सही मूल्यांकन की आशा कैसे की जा सकती है ।

7. मूल्यांकन का परीक्षक की व्यक्तिगत परिस्थितियों से प्रभावित होना

आज कल परीक्षक द्वारा कापियों का जांचना एक व्यवसाय के रूप में देखा जाता है न कि एक महत्वपूर्ण कार्य के रूप में । अत: परीक्षक अपना केवल यह दायित्व समझता है कि उसे कापियां समय से जांच लेनी चाहिए । ऐसी स्थिति में प्राध्यापक प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता दोनों समय में उत्तर पुस्तिकायें जांचता है । जिसमें उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों से मूल्यांकन प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है ।

8. नैतिक पतन

आज हमारे पूरे समाज का नैतिक पतन दिन-प्रतिदिन तेजी से होता जा रहा है । अध्यापक भी समाज का अभिन्न अंग हैं । इसलिए, यह देखने में आ रहा है कि पैसों के बल पर बहुत से परीक्षकों से मनचाहें अंक प्राप्त किये जा सकते हैं । यह स्थिति बहुत ही चिन्ताजनक है ।

9. नकल करने की प्रवृति

छात्रों में नकल करने की प्रवृति ही नहीं बढ़ रही है, बल्कि शिक्षा में ऐसे लोग भी पदार्पण कर रहे हैं, जो नकल करना या कराना, बुरा नहीं समझते हैं । वास्तव में नकल का मूल्यांकन पर सीधा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि नकल करने में छात्र का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता तथा वह छात्र जो पूरे वर्ष कठिन परिश्रम

करता है तथा ईमानदारी से परीक्षा देता है, नकल करने वाले छात्र से बहुत पीछे रह जाता है, जो हमारी शिक्षा प्रणाली का भारी दोष है ।

सुझाव

मूल्यांकन पद्धति में गुणात्मक सुधार लाने के लिए निम्नलिखित सुझावों पर विचार किया जाना चाहिए-

प्रश्नों की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि वे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करते हों ।

निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ दोनों तरह के प्रश्नों का निर्माण किया जाय तथा निबन्धात्मक प्रश्न केवल 15 प्रतिशत रखे जायें । अन्य प्रश्न वस्तुनिष्ठ हों ।

सरल एवं कठिन दोनों प्रकार के प्रश्न रखे जाय सभी प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य कर दिया जाय ।

विश्वसनीयता एवं वैधानिकता के लिए परीक्षक को मूल्यांकन के लिए मापदण्ड निश्चित कर लेना चाहिए ।

परीक्षकों की नियुक्ति पूर्णतया गोपनीय रखी जाय । ऐसे अध्यापकों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जाय जो नकल प्रवृत्ति को रोकने में सहायता प्रदान करते हैं ।

उन छात्रों के खिलाफ कठोर कार्यवाही की जाय जो अध्यापकों या विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को प्रभावित करते हैं या करने का प्रयास करते हैं ।

उन अध्यापकों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाय जो छात्रों को नकल कराने में या नकल के लिए प्रोत्साहित करने में या नम्बर बढ़ाने में या अन्य परीक्षकों से नम्बर बढ़वाने में छात्रों की मदद करते हैं ।

परीक्षायें त्रैमासिक ली जायं तथा इनका कुछ प्रतिशत वार्षिक मूल्यांकन में जोड़ दिया जाय ।

परीक्षकों के द्वारा किये गये मूल्यांकन की विश्वसनीयता की जाँच करने के लिये एक बोर्ड का गठन किया जाय, जो परीक्षक द्वारा किये गये मूल्यांकन के पश्चात कुछ कापियों की जांच करें । अगर परीक्षक या बोर्ड द्वारा दिये गये नम्बरों में बहुत अधिक भिन्नता आती है तो प्राध्यापक को परीक्षकत्व से हमेशा के लिए विश्वविद्यालय द्वारा वंचित कर दिया जाय ।

विश्वविद्यालय द्वारा उन व्यक्तियों को परीक्षक न नियुक्त किया जाय जो शिक्षक नहीं हैं या नहीं रहे हैं । क्योंकि जो शिक्षक नहीं रहा है, वह मूल्यांकन के प्रति न्याय नहीं कर सकता ।

विश्वविद्यालय के भीतर मूल्यांकन बिल्कुल समाप्त कर दिया जाय । प्रत्येक विश्वविद्यालय की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन उस विश्वविद्यालय से बाहर किसी दूसरे विश्वविद्यालय द्वारा ही की जाय । इससे सभी विश्वविद्यालयों में स्तर की समानता बनी रहेगी तथा विश्वविद्यालय स्तर पर पनपने वाले भाई-भतीजावाद से भी मूल्यांकन प्रभावित नहीं होगा ।

परीक्षक यह अपना नैतिक कर्तव्य समझे कि मूल्यांकन उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों से प्रभावित न हो । कापियों को जांचने के लिए पर्याप्त समय दिया जाये ।

परीक्षक को कापियां जांचना एक व्यवसाय नहीं समझना चाहिए तथा पैसे कमाने का साधन नहीं मानना चाहिए अपितु उसे ऐसा दृष्टिकोण रखना चाहिए कि वह देश के भावी नागरिकों का मूल्यांकन कर रहा हैं जिसके कन्धों पर देश का भार होगा ।

नकल की प्रवृत्ति पर रोक लगाया जाना चाहिए अथवा वस्तुनिष्ठ प्रश्न देकर न प्रश्नों की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ाकर पुस्तकें ले जाने की छूट दे दी जानी चाहिए ।

प्राध्यापकों/परीक्षकों के लिए मूल्यांकन के सम्बन्ध में हर वर्ष पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिए तथा हर परीक्षक के लिए हर वर्ष इसमें शामिल होना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए ।

नकल करने या कराने की प्रवृत्ति पर रोक लगाने की ओर भी समय-समय पर विचार किया जाना चाहिये ।

प्राय: देखा जाता है कि विश्वविद्यालयों में कुछ प्रभावी प्राध्यापक अपने प्रभाव व बल पर पैसे कमाने के उद्देश्य से अपनी सीमा से अधिक मूल्यांकन का कार्य ले लेते हैं जबकि विश्वविद्यालयों में अन्य प्राध्यापक या तो मूल्यांकन कार्य से वंचित रहते हैं या बहुत कम दिया जाता है । इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक अध्यापक को मूल्यांकन करने का समान अवसर दिया जाय ।

वर्तमान मूल्यांकन पद्धति की कमियां तथा उनको दूर करने के सुझाव

-डॉ० डी०डी० भैठानी

. राजनीति से नैतिक मूल्यों के पलायन के बाद हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में सर्वत्र खोखलापन आ रहा है । दुर्भाग्य यह है कि हमारी शिक्षा पद्धति भी आज मूल्यहीनता की चपेट में आ गई है तथा युवा पीढ़ी अशान्त हो रहा है और युवामानस उद्वेलित है ।

स्वतन्त्रता के पश्चात शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ है । इन 38 वर्षों में शिक्षा का क्षेत्र निरन्तर विस्तृत ही होता रहा है । किन्तु यह बिड़म्बना है कि शिक्षा की मूल गुणावत्ता का भी समानान्तर रूप से ह्रास हुआ है, पूर्व में निर्धारित शिक्षा के माप दण्डों का वर्तमान संदर्भों में कोई उपयोग व औचित्य नहीं है । प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री जे०पी० नायक ने इस तथ्य को खुले रूप में स्वीकारा है । 1968 में संसद ने जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारित की थी उसका भी मुख्य आधार यही था । अतः नई शिक्षा नीति के निर्धारण में इस तथ्य को दृष्टिगत करना नितान्त आवश्यक है कि उसमें व्यवहारिकता के सभी पहलुओं का अपेक्षित संतुलन हो ।

प्राथमिक शिक्षा का सर्व व्यापीकरण व समानता आवश्यक है । वर्तमान में ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में दी जा रही शिक्षा में पर्याप्त असमानता है । ग्रामीण छात्रों में पर्याप्त प्रतिभा होते हुए भी वह उच्च शिक्षा हेतु अनुपयुक्त हो जाता है । इसके कई उदाहरण उभार कर आये हैं । इसके पीछे मूलतः कारण है कि ग्रामों में विद्यार्थियों को अध्यापकों द्वारा सही मूल्यांकन न करना विद्यालयों में अध्ययन अध्यापन की समुचित व्यवस्था न होना, अध्यापकों की कमी तथा पाठ्यक्रम का विस्तृत होना । कोठारी आयोग ने इस बात पर पर्याप्त बल दिया था कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में चलाये जा रहे स्कूलों में समानता हो, किन्तु यह असमानता आज भी कायम है ।

डॉ० डी०डी० भैठानी, भूगोल-विभाग, गढ़वाल विश्वविद्यालय, परिसर, टिहरी (गढ़वाल)

अधिकांश वर्तमान अध्यापक स्वयं को एक वास्तविक अध्यापन न समझकर वेतन पाने वाले सरकार के कर्मचारी मात्र अनुभव करते हैं और वर्तमान छात्रगण भी स्वयं को छात्र का स्थान न देकर अपने गुरु को एक वास्तविक गुरु नहीं समझते हैं । अपने आचार्यों के प्रति उनमें लेशमात्र भी आदर नहीं रह गया है । अत: ऐसे वातावरण में शिक्षा का प्रगति पथ पर अग्रसर होना अत्यन्त कठिन है ।

विश्वविद्यालयों की लापरवाही तथा अनियमितताओं के कारण छात्र एवं अध्यापकों को अनावश्यक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है तथा कभी-कभी बहुत हानि उठानी पड़ती है । इन सारी परिस्थितियों को समक्ष रखकर वर्तमान मूल्यांकन पद्धति की भी कमियां है जिनके परिणामस्वरूप शिक्षा के स्तर में पर्याप्त गिरावट आयी है ।

(क) मूल्यांकन में लापरवाही

वर्तमान समय में शिक्षक अपनी जिम्मेदारी उस निष्ठा से नहीं निभा रहें हैं, जिस तरह उन्हें निभानी चाहिए । प्राय: विद्यार्थियों के सही मूल्यांकन में लापरवाही दिखाई देती है । फलस्वरूप प्रतिभाशाली छात्र असन्तुष्ट हो जाता है और अध्ययन के प्रति अरुचि पैदा हो जाती है । केन्द्रीय मूल्यांकन पद्धति में प्राय: देखा गया है कि शिक्षक दूर-दूर से धन अर्जित करने के उद्देश्य से आते हैं और उत्तर-पुस्तिकाओं का सही रूप से मूल्यांकन करने में लापरवाही करते हैं । अत: मूल्यांकन में खामियां रह जाती हैं ।

(ख) मूल्यांकनकर्ता की सही नियुक्ति न होना

मूल्यांकन में प्राय: यह भी देखा गया है कि योग्यतानुसार या विशेषीकरण के आधार पर नियुक्ति नहीं की जाती है । फलस्वरूप मूल्यांकन में कमी रह जाती है । यदि किसी विषय के विशेषीकरण में प्रश्न-पत्र हैं तो उससे सम्बन्धित शिक्षक से न तो प्रश्न-पत्र बनाया जाता और नहीं मूल्यांकन कराया जाता है । परिणामस्वरूप विद्यार्थी का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता है । यह पूर्णरूप से विभिन्न परीक्षा अनुभागों एवं सम्बन्धित अधिकारियों की त्रुटि कहीं जा सकती है । सही मूल्यांकन के लिए सही नियुक्ति का होना

आवश्यक है । अन्यथा मूल्यांकन किसी भी दशा में उचित एवं कार्यपरक नहीं कहा जा सकता है ।

(ग) मूल्यांकनकर्त्ता में ज्ञान का अभाव

कभी-कभी राजनैतिक दबाव एवं अन्य कारणों से ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति हो जाती है, जो उस कार्य के लिए सक्षम नहीं समझे जाते हैं । अत: मूल्यांकनकर्त्ता/परीक्षक समुचित ज्ञान व अनुभव के आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिए ।

(घ) मूल्यांकन में पक्षपात

प्राय: मूल्यांकन जातीय, धर्म, राजनैतिक आधार पर करते देखा गया है । क्षेत्रीय आधार पर भी मूल्यांकन करते पाया गया है । उक्त आधार पर जब मूल्यांकन होता है तो योग्य एवं प्रतिभावान विद्यार्थी को बड़ी हानि उठानी पड़ती है । विद्यार्थी के कार्य का सही मूल्यांकन पक्षपात रहित होना आवश्यक है । चाहे वहकिसी भी क्षेत्र, जाति, धर्म का क्यों न हो ।

(ङ) मूल्यांकन में वाह्य दबाव

मूल्यांकन कार्य में वाह्य दबाव एक महत्वपूर्ण कमी है इससे मूल्यांकनकर्ता को बाध्य किया जाता है । यह दबाव राजनैतिक स्तर तथा प्रशासनिक स्तर पर देखा गया है । प्रयोगिक/मौखिकी परीक्षाओं में अनुशासनिक स्तर से छात्रों का दबाव भी देखा गया है । मूल्यांकनकर्त्ता को इन वाह्य दबावों में किसी भी दशा में नहीं आना चाहिए । यदि दृढ़ निश्चय किया जाय तो यह दबाव स्वयमेव कुछ समय बाद समाप्त हो जायेगा और मूल्यांकन सही रूप में हो सकेगा ।

(च) विद्यार्थियों का समय-समय पर मूल्यांकन न होना

प्राय: विद्यार्थियों का सत्र में एक बार ही मूल्यांकन होता है । फलत: न तो छात्र का सतत् अध्ययन चलता है और नहीं सही मूल्यांकन होता है । विद्यार्थी का कम से कम त्रैमासिक मूल्यांकन होना आवश्यक है, जो सत्र के अन्त में जुड़ना चाहिए । इससे विद्यार्थी अनवरत रूप से पठन-पाठन में लगा रहेगा ।

(छ) गुरु-शिष्य सम्बन्धों में ह्रास

कितना विरोधाभास हो गया है कि आज की और अतीत की शिक्षा पद्धति में। एक वह समय था जब शिष्ट अपने गुरु के घर पढ़ने जाया करता था। एक आज, जब गुरु ही शिष्य के घर पढ़ाने जाता है। यदि हम द्वापर युग की ओर देखें तो मालूम होता है कि द्रोणाचार्य ने अपने शिष्य के प्यार में अर्जुन को धानुष्य विद्या में पारंगत बना दिया था। कितने खरे उतरे थे गुरु-शिष्य अपने कर्तव्य में। आज सम्बन्धों के ह्रास होने से शिक्षक की रुचि शिष्य के प्रति पूर्व जैसी नहीं रही। अतः मूल्यांकन भी मात्रा धानार्जन ही रह गया है।

(ज) औसत मूल्यांकन

औसत मूल्यांकन विद्यार्थी की सही प्रतिभा का द्योतक नहीं हो सकता। प्रायः उत्तर पुस्तिकाओं के खो जाने अथवा न मिलने के कारण औसत मूल्यांकन कर लिया जाता है। यह आवश्यक नहीं कि परीक्षार्थी सभी प्रश्न-पत्र एक जैसा ही करे। यह बहुत कुछ प्रश्न-पत्रों पर भी निर्भर करता है कि किसी प्रश्न-पत्र में विद्यार्थी के अधिक अंक आ जायं और किसी में कम। इसके लिए पुनः परीक्षा छात्र की ली जानी चाहिए, ताकि सही मूल्यांकन किया जा सके और छात्र भी सन्तुष्ट हो जाय। यह कमी प्रायः परीक्षा नियन्त्रण या प्रशासनिक स्तर पर की जाती है, जिसके लिए दोषी व्यक्ति को दण्डित किया जाना चाहिये।

(झ) मूल्यांकन में विलम्ब

प्रायः यह भी देखा गया है कि परीक्षकों द्वारा मूल्यांकन कार्य में जानबूझ कर विलम्ब किया जाता है। जिस कारण कई तरह की बुराईयां उत्पन्न हो जाती हैं। अतः मूल्यांकन कार्य एक निर्धारित अवधि के अन्तर्गत अविलम्ब हो जाना चाहिए। इससे वाह्य दबाव न्यूनतम होंगे।

(ञ) प्रश्न-पत्रों का गलत ढंग से निर्माण

यह भी कई बार देखने में आया है कि प्रश्न-पत्र निर्माता गलत ढंग से प्रश्नों का निर्माण करता है ऐसे प्रश्न समझने में छात्रों को कठिनाई होती है।

फलस्वरूप परीक्षक द्वारा भी ऐसे प्रश्नों में गलत ढंग से मूल्यांकन हो जाता है । प्रश्न जो पूछे जाँय वे अपने में तथ्यपूर्ण एवं स्पष्ट होने आवश्यक हैं, जिससे परीक्षार्थी एवं मूल्यांकनकर्ता को समझने एवं सही मूल्यांकन करने में कोई कठिनाई न हो ।

(२) मूल्यांकन कार्य का गोपनीय होना

मूल्यांकन पद्धति में उपरोक्त कमियों के अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि ये कमियां मूल्यांकन कार्य में गोपनीयता के कारण भी उत्पन्न हो गई हैं । मूल्यांकन विद्यार्थी के ही सम्मुख होना चाहिए । इससे एक तो छात्र को अपनी कमियों का सामने ही निराकरण हो जायेगा और दूसरा प्रत्येक छात्र अपने-अपने मूल्यांकन से सन्तुष्ट हो जायेंगे । गोपनीयता से कई प्रकार की कमियों की जानकारी सम्मुख नहीं आ पाती है । परिणामस्वरूप विद्यार्थी मूल्यांकन से सन्तुष्ट नहीं रहता है ।

वर्तमान में प्राथमिक-शिक्षा स्तर से उच्च शिक्षा स्तर तक वर्तमान मूल्यांकन पद्धति पर विचार किया जाना चाहिए । वर्तमान शिक्षा पद्धति की असफलता का मूल कारण इसका अव्यावहारिक होना है । विशेषकर उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रम का बोझ इतना ज्यादा है कि छात्र मात्र किताबी ज्ञान में ही उलझ कर रह जाता है । शिक्षा में विविधता का होना अत्यन्त आवश्यक है ।

अध्यापकों का मत है कि समाज में उनका उचित स्थान नहीं है । उन्हें समान कार्य करने वाले कर्मचारियों की अपेक्षा सम्मान मिलता है । सुविधायें नहीं मिलती । फलस्वरूप उन्हें कार्य करने में अरुचि पैदा हो जाती है । मेरा मत है कि अध्यापकों को समाज में उचित स्थान देने के लिए समुचित सुविधा दे दी जाय ताकि वे अपने कार्य के प्रति निष्ठावान रह सकें ।

शिक्षाविदों ने अनेक बार यह बात कही है कि आधुनिक ज्ञान विज्ञान और तकनीकी के अनुरूप हमें अपनी शिक्षा को बनाना है । हमें 21वीं शादी के अनुरूप बनना है ।

हमारे विश्वविद्यालयों को इस हेतु ध्यान रखना आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षा के निर्धारण में देश की आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकी को विकसित

करने हेतु पाठ्यक्रम का समावेश करें । इसके लिए वर्तमान उद्योगों की समस्याओं पर समय-समय पर विद्यार्थियों द्वारा शोध किये जाने की व्यवस्था हो, ताकि वे कार्यक्षेत्र में आने पर उन समस्याओं का समुचित निदान खोज सकें । दूसरे शब्दों में, अधिकाधिक प्रायोगिक कार्यों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में जोड़े जाने की आवश्यकता है । ग्रामीण प्रतिभाओं को छात्रवृत्ति, इत्यादि में प्राथमिकता दी जानी चाहिए । साथ ही महाविद्यालयों, पुस्तकालयों में पुस्तकों की पर्याप्त व्यवस्था हो । शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन के लिए यह व्यवस्था तत्काल प्रभावी बनाई जानी चाहिए ।

शिक्षा सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के मार्ग में सशक्त दिशा निर्देशक है, किन्तु जब तक समानता के आधार पर वर्तमान शिक्षा पद्धति में समन्वय नहीं लाया जाता तब तक व्यवहारिक शिक्षा की बात करना अतिशयोक्ति होगी । निष्कर्ष के रूप में शिक्षा पद्धति को रोजगारोन्मुखी, नैतिक-परक, व्यक्तित्व का विकास करने वाली तथा नियोजित होना चाहिये ।

भारतीय उच्च शिक्षा तथा विकसित राष्ट्रों की उच्च शिक्षा में अन्तर तथा सुधार के सुझाव

-डॉ0 के0बी0 बुधोडी, प्राध्यापक-शिक्षा

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में उच्च शिक्षा का विकास सीमित था । ब्रिटिश सरकार द्वारा मात्र 20 विश्वविद्यालय भारत में स्थापित किये गये थे। स्वतन्त्रता के बाद उच्च शिक्षा में आशातीत प्रगति हुई, किन्तु उच्च शिक्षा का इतिहास स्वतन्त्रता के बाद दो प्रकार का रहा है । प्रथम संख्यात्मक विकास एवं प्रगति तथा द्वितीय गुणात्मक विकास कहा जा सकता है । पूरे विश्व में उच्च शिक्षा का संख्यात्मक विकास की दृष्टिकोण से भारत का स्थान तीसरा है । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का स्थान छात्र संख्या की दृष्टि से प्रथम तथा सोवियत रूस का द्वितीय है । भारत में भारतीय शिक्षा आयोग के पूर्वानुमान के आधार पर 1985-86 में भारत में लगभग 124 विश्वविद्यालय तथा 40 लाख छात्र संख्या हो गयी है । कालेजों की संख्या प्रतिदिन बढ़ी जो औसतन पूरे विश्व में सबसे अधिक ऊँची है । सन् 1947 से विश्वविद्यालय छात्र संख्या 10 प्रतिशत से भी अधिक दर से प्रति वर्ष बढ़ी है ।

इस प्रकार के विस्तार एवं प्रगति से उच्च शिक्षा के दरवाजे प्रत्येक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, धनी एवं गरीब, पिछड़े एवं अनुसूचित के लिए उदारता पूर्वक खोल दिए गए हैं । साथ ही पिछड़े वर्ग के लिए उच्च शिक्षा में स्थान आरक्षित किए गये हैं । उनको आर्थिक सहायता के रूप में छात्रवृत्तियाँ एवं उच्च शिक्षा के उपरान्त रोजगार में भी स्थान आरक्षित किये गये हैं । जिससे उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले छात्रों की भीड़ उच्च शिक्षा केन्द्रों में उमड़ रही है ।

इस प्रकार की भीड़ ने उद्देश्यहीन, संख्यात्मक उच्च शिक्षा के विस्तार एवं विकास में वास्तव में भारतीय विश्वविद्यालयों को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनेकों समस्याओं से घेर दिया है तथा विकसित देशों की तुलना में भारतीय उच्च शिक्षा भीड़ का केन्द्र बन कर रह गयी है ।

क्रेमर तथा ब्राउन महोदय ने लिखा है-"जब भी कोई विदेशी या भारतीय ने उच्च शिक्षा पर दृष्टि डाली, उसने यही कहा कि अन्य देशों की तुलना में भारतीय उच्च शिक्षा का स्तर अत्यधिक न्यून है।" भारतीय तथा विकसित देशों की उच्च शिक्षा में निम्नलिखित अन्तर तथा विशेषताएं हैं-

1. विकसित देशों में उच्च शिक्षा का माध्यम आवश्यक रूप से एक तथा वह भाषा होती है, जो वहां की अधिकांश जनता की भाषा होती है। राष्ट्रीय भाषा होती है। जैसे रूस में उच्च शिक्षा आवश्यक रूप से रूसी भाषा में, जर्मनी तथा जापान में, जर्मन तथा जापानी में शिक्षा दी जाती है। ब्रिटेन तथा अमेरिका में अंग्रेजी उच्च शिक्षा का माध्यम है। भारत में राष्ट्र भाषा हिन्दी को कहा जाता है, किन्तु उच्च शिक्षा में शिक्षा का माध्यम प्रतिष्ठा के प्रतीक तथा विदेशों की मातृ भाषा अंग्रेजी है। क्योंकि अंग्रेजी माध्यम से पढ़ना, पढ़ाना तथा परीक्षा देना आज प्रतिष्ठा तथा अच्छे रोजगार का साधन माना जाता है। वे छात्र, अध्यापक जो हिन्दी में पढ़ते-पढ़ाते हैं, अपने को हीन भावना से ग्रसित तथा रोजगार प्राप्ति में कठिनाई का सामना करते हैं। भारत में त्रिभाषी सूत्र को अपनाकर और भी भ्रान्ति, संदेह, विभेदीकरण तथा शिक्षा के माध्यम को कमजोर बनाया जा रहा है। इससे उच्च शिक्षा में गिरावट आ रही है। मात्र त्रिभाषा सूत्र को अपनाकर राष्ट्रीय एकता व अखण्डता कहीं बनाये रखी जा सकती है जब समय आ गया है। अतः भारत में उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी पूरे देश में होना चाहिए।

2. भारतीय उच्च शिक्षा में, जो विकसित देशों की तुलना में, विकट समस्यायें हैं, वह है प्रवेश परीक्षा, पाठ्यक्रम, चरित्र, स्वाध्याय एवं स्वावलम्बन की विकसित देशों में आज चयनात्मक प्रवेश प्रणाली, वस्तुनिष्ठ परीक्षा, समाजोपयोगी पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय चरित्र तथा उच्च ज्ञान को उच्च शिक्षा में प्राथमिकता दी जा रही है, किन्तु भारत में आज भी उच्च शिक्षा केन्द्रों में भीड़ को उच्च शिक्षा को मात्र समय व्यतीत करने के लिए तथा उपाधि प्राप्त करने वालों को प्रवेश दिया जा रहा है। भारत में उच्च शिक्षा में भीड़ को कम करने के लिए चयनात्मक प्रवेश प्रणाली के आधार पर उच्च ज्ञान के जिज्ञासुओं को ही

प्रवेश दिया जाना चाहिए । साथ ही इतनी ही संख्या में उच्च शिक्षा में प्रवेश दिया जाना चाहिए जिनके लिए सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध करायी जा सकें ।

बिना भवनों, पुस्तकालयों, कुशल अध्यापकों, प्रयोगशालाओं तथा उपकरणों के उच्च शिक्षा ग्रहण करना व्यर्थ है । वास्तविक योग्यता, ज्ञान एवं क्षमता की परीक्षा लेने की व्यवस्था जब तक उच्च शिक्षा में नहीं होगी, तब तक उच्च शिक्षा ग्रहण करने का कोई औचित्य नहीं है । प्राचीन कालीन नालन्दा एवं तक्षशीला विश्वविद्यालयों की भांति प्रवेश एवं परीक्षा के कठोर नियम होने आवश्यक हैं । जिससे आज की उच्च शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा विश्वविद्यालयों पर कोई प्रश्न चिह्न न लगें । अध्यापकों के ज्ञान का स्तर भी उच्च कोटि का होना चाहिये । अतः उच्च शिक्षा में भाषा का उच्च होना आवश्यक है, तभी प्रदा भी उच्च होगी । विकसित देशों की तुलना में भारतीय उच्च शिक्षा में ही सभी प्रकार की आदाओं में कमी है, चाहिए वह छात्र हो या अध्यापक, प्रशासन हो या कर्मचारी, सभी निम्न श्रेणी की आदा के रूप में प्रवेश लेते हैं । इसीलिए प्रदा भी निम्न श्रेणी की होती है । परिणाम स्वरूप आज तक हम अपनी मौलिक भारतीय बुनियादी शिक्षा पद्धति कहीं बना सके । उधार में ली गयी शिक्षा को ही घसीटा जा रहा है ।

3. उच्च शिक्षा में चरित्रहीनता तथा अनुशासन हीनता में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है । वर्तमान उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त न तो व्यक्तिगत का चरित्र बन पा रहा है और न राष्ट्रीय चरित्र । सभी क्षेत्रों में चरित्र तथा अनुशासन में गिरावट आयी है इसी संदर्भ में इलाहाबाद में एक न्यायिक गोष्ठी में बोलते हुए भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री पी० एन० भगवती ने ठीक ही कहा है कि "निर्धनता तथा अशिक्षा से देश का विनाश नहीं होगा, बल्कि राष्ट्रीय चरित्र तथा व्यक्तिगत चरित्र में इसी प्रकार गिरावट आती रही तो भय है कि देश का विनाश हो जायेगा ।" उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अनुशासन, आत्म नियन्त्रण, नियमों का पालन अधिकारों एवं कर्तव्यों की सुरक्षा, आत्मावलोकन राजनीति विहीन प्रशासन,

पक्षपात रहित निर्णय, निर्भीक नीतियों की घोषणा करने की क्षमता एवं साहस आना चाहिए ।

4. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वायतता के नाम पर भी संसाधनों का अत्यधिक दुर्पयोग हो रहा है । स्वायत्तता तभी सफल हो सकती है, जब चरित्र ऊँचा हो । जहां स्वार्थ ही चरित्र हो वहां विश्वविद्यालयों में झगड़े, विवाद, आन्दोलन तथा न्यायालयों की ओर दौड़ धूप रहती है ।

5. भारतीय उच्च शिक्षा रोजगार से न जुड़ पाने के कारण हमारे देश के अच्छे वैज्ञानिक चिकित्सक, अध्यापक, प्रशासक तथा विद्यार्थी रोजी-रोटी की खोज में विदेशों को पलायन कर रहे हैं । इसके लिए रोजगार परक पाठ्यक्रम क्षेत्रीय तथा स्थानीय स्त्रोतों के आधार पर उच्च शिक्षा का पुर्नगठन करने की आवश्यकता है । जिसके पलायन को रोका जा सके ।

अब प्रश्न उठता है कि किस रूप में विकसित देशों की शिक्षा भारत वर्ष से उन्नत तथा अच्छी है । विदेशी शिक्षा हो या भाषा या अन्य वस्तुयें उनके प्रति भारतीय बड़े सम्मान से देखते हैं तथा अपनातें हैं । अपने देश की भाषा, शिक्षा तथा अन्य तकनीकों, वैज्ञानिकों, अध्यापकों, पाठ्यक्रमों शिक्षा प्रतिरूपों के प्रति अनादर, असम्मान तथा हीन भावना रखाते हैं । जिसके कारण हम विदेशी तथा विकसित देशों की उच्च शिक्षा को अपने देश की तुलना में उन्नत समझते हैं ।

इस सम्बन्ध में डॉ0 हॉलैक्स महोदय द्वारा लिखित पुस्तक तुलनात्मक शिक्षा का संदर्भ देना चाहूँगा । अपनी पुस्तक में डॉ0 होलैक्स ने सभी उधार के शिक्षा प्रतिरूपों, शिक्षा पद्धतियों, शिक्षण विधियों, पाठ्यक्रमों, विभिन्न ढांचों की कटु आलोचना की है । उन्होंने उधार की तथा विदेशी उच्च शिक्षा के साधनों को अस्वीकार करते हुए अपने देश की सांस्कृतिक धरोहरों, भौगोलिक विषमताओं, आर्थिक कठिनाईयों, सामाजिक आवश्यकताओं, आकाक्षाओं तथा अपने देश के विभिन्न प्राकृतिक स्त्रोतों व संसाधनों को ध्यान में रखाते हुए, तैयार किए गए उच्च शिक्षा के प्रतिरूप, ढाचे, पाठ्यक्रम प्रवेश परीक्षा पद्धतियां, शिक्षण माध्यम, विधियां एवं

तकनीकी तथा रोजगार की योजना निश्चित रूप से अपने देश के लिए अधिक लाभकारी, उपयोगी एवं व्यवहारिक होंगी ।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, चीन, जापान आदि विकसित राष्ट्रों की उच्च शिक्षा हमें इसलिए उन्नत दिखायी पड़ती है, कि उनकी यह शिक्षा उनके राष्ट्र के अनुरूप उनके दर्शन, राष्ट्रीय, सामाजिक तथा स्थानीय आवश्यकताओं, आर्थिक समता सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित है । जिससे वह शिक्षा उनके लिए उपयोगी सिद्ध होती है । परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह हमारे लिए भी उपयोगी हो । कुछ विशेषतायें विकसित देशों की उच्च शिक्षा में अवश्य देखने को मिलती हैं, जैसे नियंन्त्रित प्रवेश प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ परीक्षा, उच्च शिक्षा में स्वध्याय तथा विशेषीकरण को स्थान, शोध कार्य, सामाजिक उपयोग एवं उत्पादकता पर अधिक ध्यान देना । उच्च शिक्षा मात्र उपाधि ग्रहण करने का साधन तथा प्रतिष्ठा का प्रतीक नहीं समझा जाता है । अत: तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय उच्च शिक्षा में सुधार हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं-

सुधार हेतु सुझाव

भारतीय उच्च शिक्षा विभिन्न सांस्कृतिक धरोहरों, भौगोलिक विषमताओं, भाषा, आन्तरिक संसाधनों तथा आर्थिक सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए आमूल-चूल परिवर्तन के साथ नये ढंग से लागू होनी चाहिये । वर्तमान उच्च शिक्षा पूर्ण भारतीय प्रतिरूप के रूप में अपनायी जानी चाहिए। राष्ट्रभाषा हिन्दी उच्च शिक्षा का शिक्षण माध्यम आवश्यक रूप से हिन्दी भाषा है । उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रम समाज, तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनायें जाने चाहिए।

प्रवेश एवं परीक्षा प्रणाली चयनात्मक, वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय एवं कठोर होनी आवश्यक है । उच्च शिक्षा उन्हीं को दी जानी चाहिए, जिनकी इस शिक्षा के प्रति उच्च सकारात्मक अभिवृत्ति, अभिरुचि, प्रबल इच्छा तथा क्षमता हो । शोध कार्य, राष्ट्रीय, सामाजिक, स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उत्पादकता के रूप में होना चाहिए । उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद

अपनी देश की सेवा आवश्यक कर दी जानी चाहिए, जिससे पलायनवाद रुक सके । उच्च शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त इतने अवसर एवं साधन उपलब्ध कराये जाँय, कि वे अपने अर्जित ज्ञान का प्रयोग राष्ट्र, समाज तथा अपने कल्याण में कर सकें । उच्च शिक्षा का उद्देश्य मानव सेवा, समाज सेवा, नैतिकता तथा चरित्र का निर्माण आवश्यक रूप से होना चाहिए तभी राष्ट्रीय भावना तथा भावात्मक एकता विकसित हो सकती है ।

उच्च कोटि के विद्वान, अध्यापक, कुलपति तथा प्रशासक विश्वविद्यालयों में नियुक्त होने चाहिए । इनकी नियुक्ति भी कठोर चयन के आधार पर होनी चाहिए । उच्च शिक्षा में स्वायतता होनी चाहिए । उच्च शिक्षा में स्वाध्याय, परिचर्चा विधि तथा पुस्तकालय विधि द्वारा शिक्षण दिया जाना चाहिए न कि पारम्परिक व्याख्यान पद्धति से । उत्तम कोटि के पुस्तकालयों तथा साहित्य की सुविधा दी जानी चाहिये । उच्च शिक्षा में विज्ञान, तकनीकी तथा आधुनीकीकरण को प्राथमिकता दी जाय । उच्च शिक्षा हेतु प्रतिरक्षा विभाग के समान वित्तीय व्यवस्था की जानी चाहिये । उच्च शिक्षा राजनीति से दूर रखने का पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए ।

उच्च शिक्षा नीति : एक दृष्टिकोण

- के0एन0 जोशी, प्रवक्ता-अर्थशास्त्र विभाग

यह सर्व विदित है कि भारतीय शिक्षा पद्धति, पाश्चात्य शिक्षा पद्धति की नकल होने के कारण, देश के लिए अनुपयुक्त है । विशाल देश की अनेकानेक समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से इसकी क्षमता की कमी है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के तीन दशक से भी अधिक समय बीत जाने पर भी, भारत में शिक्षा के स्तर में समुचित सुधार नहीं हो सका । सबसे बड़ी समस्या आज शिक्षा में गुणवत्ता लाने का है । विभिन्न विश्वविद्यालय बड़ी मात्रा में प्रति वर्ष विभिन्न उपाधियां बांट रहे हैं, परन्तु क्या ये उपाधियां वास्तव में योग्यता का सही मापदण्ड है । उत्तर है नहीं । आज का विद्यार्थी एवं शोधार्थी उपाधि प्राप्त कर लेने के पश्चात भी ज्ञान का उच्च स्तर नहीं रखता तथा उस उपाधि के योग्य, जो उसने अर्जित कर ली है, योग्य सिद्ध नहीं कर सकता है ।

इस न्यूनस्तर होने के अनेक कारण हैं । इसका प्रमुख कारण विद्यार्थी एवं शोधार्थी को अध्ययन के दौरान अच्छे शिक्षण, कुशल एवं योग्य निर्देशन का अभाव है । विश्वविद्यालय स्तर पर विभिन्न कक्षाओं में प्राध्यापकों, उपाचार्यों एवं आचार्यों द्वारा ईमानदारी से शिक्षण कार्य नहीं किया जाता है । विश्वविद्यालय प्राध्यापक, उपाचार्य एवं आचार्य के लिये शिक्षण के अतिरिक्त शोध कार्य भी निर्धारित किया गया है । विश्वविद्यालय स्तर पर प्राध्यापक शोध कार्यों को शिक्षण से अधिक महत्व देते हैं । फलस्वरूप शोध कार्यरत ऐसे प्राध्यापकों को शिक्षण से अरुचि उत्पन्न होती जाती है तथा वे शिक्षण से कतराने लगते हैं । फलस्वरूप विद्यार्थियों को अध्यापकों से गुणात्मक एवं गम्भीर व्याख्यान प्राप्त नहीं हो पाते । उनका ज्ञान सीमित होता है । कभी-कभी ऐसी भी स्थिति देखने में आती है कि व्याख्यान का स्तर शोध स्तर का होता है, जिसे विद्यार्थी पूर्ण रूप से नहीं समझ पाते हैं । यह स्थिति विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि हेतु असन्तोषजनक है । जिससे आज का विद्यार्थी अर्जित उपाधियों के अनुरूप नहीं होता । स्नातक एवं

स्नातकोत्तर स्तर पर कक्षाओं में विद्वान आचार्यों से पर्याप्त ज्ञानार्जन न कर पाने से छात्र, दुर्भाग्य से, यदि वह अध्यापन व्यवसाय में प्रवेश करता है, तो नई पीढ़ी को पर्याप्त ज्ञान देने में असमर्थ होता है। इस कारण शिक्षा के स्तर में सभी स्तरों पर गुणात्मक ह्रास होता है। भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है।

अध्यापन के अतिरिक्त शोध कार्य में भी चिन्ताजनक स्थिति है। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों एवं विभिन्न दिशाओं में शोध कार्य हो रहे हैं। निश्चित रूप से इसमें संख्यात्मक वृद्धि हो रही है। एक ही विश्वविद्यालय प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में शोध उपाधियां बांट रहा है। यहां उठता है- क्या शोध कार्य उच्च स्तर का हो रहा है। समस्त शोध कार्य निम्न स्तर के नहीं होते हैं, परन्तु यह निसंकोच कहा जा सकता है कि अधिकांश शोध कार्य, जो आज हो रहे हैं, निम्न स्तर के हैं। मात्र पी०एच-डी० उपाधि प्राप्त करने तक ही सीमित है। कोई भी शोधार्थी, यदि वह शोध उपाधि प्राप्त कर लेने के पश्चात भी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उच्च स्तर की शोध पत्रिकाओं में अपने शोध से सम्बन्धित दृष्टिकोण को प्रस्तुत नहीं कर सकता, अथवा राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में अपने शोध कार्य द्वारा दिशा निर्देश कर योगदान नहीं दे सकता, तो वह शोध कार्य मूल्यहीन होगा। यदि वर्तमान व्यवस्थानुसार इस प्रकार के निम्नस्तरीय शोध उपाधिधारक आने वाली पीढ़ी का शोध निर्देशन करते हैं तो निश्चित रूप से शोध का स्तर और भी गिरता रहेगा। यही स्थिति आज भारतीय विश्वविद्यालयों की है।

शोध कार्य के निम्न स्तर के भी अनेक कारण हो सकते हैं। इनमें एक प्रमुख कारण शोधार्थी को विषय का अति अल्प ज्ञान होना है। वह गम्भीर विषयों पर वास्तविक उच्च स्तर का शोध प्रस्तुत करने में सर्वथा असमर्थ रहता है और शोध कार्य में पूर्ण रूप से निर्देशक पर आश्रित रहता है। इससे शिक्षा क्षेत्र में आदा-प्रदा का सम्बन्ध नहीं सुधार पाता है। बड़े-बड़े शोध ग्रन्थ, जो डाक्टरेट् उपाधि हेतु लिखे जाते हैं, उपाधि मिल जाने के पश्चात पुस्तकालयों की रैकों में धूल धूसरित रहती है। यह वास्तविकता है

कि निम्न स्तर के शोधों की उपयोगिता उपाधि प्राप्त होते ही शून्य हो जाती है। तथा इससे ज्ञान में नया कुछ भी नहीं जुड़ता ।

प्रश्न आता है. कि क्या भविष्य की नई उच्च शिक्षा नीति भी इसी ढांचे पर चलती रहे अथवा उसमें गुणा वृद्धि हेतु कुछ मौलिक परिवर्तन किए जाय । संदर्भित तथ्यों के आधार पर मेरी स्पष्ट राय है कि विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापन एवं शोध कार्य में, विशिष्टीकरण के सिद्धान्तानुसार अन्तर किया जाना चाहिए । चूँकि दोनों कार्य ज्ञान से सम्बन्धित हैं, इनमें कार्य के स्वरूप एवं शैली की दृष्टि से भिन्नता भी है । वास्तव में शिक्षण कार्य विषय ज्ञान एवं शिक्षण कला से सम्बन्धित हैं, जबकि शोध कार्य किसी समस्या विशेष तथ्यों के आधार पर निर्वचन से सम्बन्धित है । जिसमें लेखन कला विशिष्ठ स्थान रखती है । इस प्रकार शोध एवं शिक्षण कार्य में एक आधारभूत अन्तर है ।

सामान्यत: व्यवहार में यह देखा गया है कि एक व्यक्ति विषय का पर्याप्त ज्ञान रखते हुए, उच्च कोटि का अध्यापक हो सकता है, परन्तु लेखन कला में प्रवीण न होने के कारण शोध कार्य में पिछड़ जाता है और योग्यता रखने पर भी उच्च पद का अधिकारी नहीं बन पाता । ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं, जहां व्यक्ति उच्च स्तर अथवा राष्ट्रीय महत्व का शोध कार्य करता है, और कर भी रहा है, परन्तु समयाभाव एवं अरुचि के कारण वह अपने ज्ञान से स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर छात्रों का अध्यापन कर ज्ञानवर्द्धन नहीं करता । अत: उसकी उपयोगिता अध्यापक के रूप में शून्य हो जाती है । क्या इससे वास्तव में हमारा शिक्षा का स्तर सुधार रहा है । क्या वास्तव में शिक्षण एवं शोध का कार्य एक ही व्यक्ति द्वारा साथ-साथ किया जाना चाहिए । मेरी राय में, शिक्षण एवं शोध दोनों अपने-अपने क्षेत्र में विशिष्टीकृत कार्य हैं । अत: इन दोनो कार्यों का अलग-अलग विकास किया जाना चाहिए । ये दोनो ही कार्य विश्वविद्यालयों के विभिन्न विभागों में विशिष्टीकृत व्यक्तियों द्वारा ही सम्पन्न किए जाने चाहिये ।

इस उद्देश्य से विभिन्न विश्वविद्यालयों में दो प्रकार के अध्यापक हो सकते हैं । शोध निर्देशन का अधिकार केवल उन्हें ही मिलना चाहिए, जिनका स्वयं

का शोध कार्य राष्ट्रीय स्तर का हो और जिसे राष्ट्रीय स्तर पर शोध के स्तर की दृष्टि से अथवा ज्ञान में योगदान की दृष्टि से मान्यता दी जानी है। अन्य अध्यापकों को विश्वविद्यालय स्तर पर पूर्ण ईमानदारी के साथ शिक्षण कार्य करना चाहिये। शोधार्थी एवं शोध निर्देशक तथा अध्यापक अपने कार्य में बराबर अपनी कुशलता बढ़ाते रहे। इस हेतु उनके लिए कोई मापदण्ड निर्धारित किए जाना चाहिए। दोनों ही क्षेत्रों में गुणवत्ता एवं कुशलता बनाये रखने के लिए पाठ्य पुस्तकें संदर्भ पुस्तकें लिखकर अथवा शोध पत्र प्रकाशित कर अपना ज्ञान और बढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार शोध क्षेत्र में कार्यरत विद्वान संदर्भ ग्रन्थों की रचना कर, अपने शोध को उच्च स्तर तक बढ़ाकर, जिससे वह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त कर ज्ञान में कुछ वृद्धि कर सकें, अपनी कुशलता सिद्ध कर सकते हैं। यदि दोनों क्षेत्रों का इस आधार पर तालमेल तथा समानान्तर विकास किया जाय, तो निश्चित रूप से भावी पीढ़ी का शैक्षिक एवं शोध स्तर बढ़ाया जा सकता है।

दोनों वर्ग अपने क्षेत्र में अपने कार्यों द्वारा राष्ट्र के बहुमुखी विकास में योगदान देते हैं। दोनों का कार्य विशिष्ट होते हुए भी समान महत्व का होता है। इसलिए दोनों की अर्हतायें गम्भीरता एवं विवेकशीलता के साथ निर्धारित की जांय। दोनों वर्गों को समान मानकर उन्हें समान वेतन एवं समान सुविधाएं प्रदान की जांय। उनकी प्रोन्नति भी समान आधारों पर की जाय। नियुक्ति के समय पर्याप्त योग्यता को ध्यान में रखा जाय। नियुक्ति के पश्चात प्रत्येक प्राध्यापक एवं शोधकर्ता को स्थान रूप से पूर्ण सेवावधि में कम से कम दो बार प्रोन्नति दी जाय। इससे उनमें कार्य के प्रति उत्साह बना रहेगा।

नियुक्ति की वर्तमान व्यवस्था में भी आवश्यक संशोधन करना होगा। जिससे कार्य की उपयुक्त योग्यता रखने वाला व्यक्ति ही नियुक्त हो। यदि प्राध्यापक पद की नियुक्ति में अन्य मापदण्डों के अतिरिक्त कक्षा में किसी विषय पर व्याख्यान देने, जिससे अभ्यर्थी की अभिव्यक्ति मालूम हो सके तथा शोध सम्बन्धी पदों हेतु लेखन कला की अभिव्यक्ति हेतु नियुक्ति प्रक्रिया में किसी समस्या का प्रस्तुतीकरण तथा अनुसंधान विधि पर निबन्ध लिखाने की अतिरिक्त

योग्यता साक्षात्कार के साथ जोड़ दी जाय, तो दोनों क्षेत्रों में समुचित योग्यता के व्यक्ति नियुक्त किए जा सकते हैं । नियुक्ति पूर्ण ईमानदारी के साथ की जानी चाहिए । शिक्षा के स्तर में वृद्धि के लिए प्राध्यापकों तथा शोध कर्ताओं की आवास सम्बन्धी सुविधाओं को भी आवश्यक रूप से महत्व दिया जाना चाहिये । इस विश्लेषण का आधार यह स्पष्ट है कि शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में स्तर एवं गुण की जो कमी आ गयी है, उसे नयी उच्च शिक्षा नीति द्वारा पूर्ण रूप से सुधारने की आवश्यकता है । शिक्षण एवं शोध दोनो की विशिष्टीकरण के आधार पर अलग कर विकास किया जाय । नई पीढ़ी का वास्तविक विकास करने, उन्हें अच्छा नागरिक बनाने, उनमें योग्यता बढ़ाने एवं राष्ट्र की सुदृढ़ता एवं समृद्धि बढ़ाने के लिए शिक्षा प्रणाली में सुधार कार्य वास्तव में अत्याधिक महत्वपूर्ण कार्य हैं ।

विश्वविद्यालय और प्रसार कार्य

-डॉ० अरुण मिश्र
सहायक निदेशक, प्रौढ़ शिक्षा
गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिये शिक्षा को एक महत्वपूर्ण उपकरण माना गया है । यद्यपि प्रत्येक स्तर की शिक्षा राष्ट्र की उन्नति में सहायक होती है, लेकिन उच्च शिक्षा का स्थान इस दिशा में विशेष महत्व रखता है । आधुनिक भारत के विकास की नींव रखने वाले, भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने कहा था कि यदि विश्वविद्यालय शिक्षा ठीक है तो राष्ट्र भी ठीक रहेगा । हमारे देश में 1950-83 की अवधि में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में तीव्र गति से वृद्धि हुई और इस समय भी इस वृद्धि की दर प्रति वर्ष 6 प्रतिशत से अधिक है । इनमें से अधिकांश संस्थाओं में गुणात्मक विकास की अभी भी बहुत अधिक आवश्यकता महसूस की जाती है । आज हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था की यह कह कर आलोचना की जाती है कि उच्च शिक्षण संस्थाओं का लाभ समाज के सीमित लोगों तक ही सुलभ है तथा इन संस्थाओं के छात्र-छात्राओं में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन गुणों का समुचित विकास नहीं हो पाता, जिससे वे ऐसे व्यवसायों को अपना सकें, ताकि जीविकापार्जन के साथ अपने समाज के लिये भी लोक कल्याणकारी कार्य कर सकें । इन संस्थाओं की आलोचनाओं का कारण ज्ञात करने के लिए हमें विश्वविद्यालय के कार्यों पर प्रकाश डालना होगा ।

विश्वविद्यालय का परम्परागत कार्य संचित ज्ञान को नई पीढ़ियों तक हस्तान्तरित करना एवं शोध कार्य द्वारा ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करना है । इन उद्देश्यों के कारण विश्वविद्यालयों का लाभ एक सीमित क्षेत्र एवं वर्ग के सदस्यों को ही प्राप्त होता है । विश्वविद्यालय का निर्माण सम्पूर्ण समाज की सेवा करने के उद्देश्य से किया जाता है । अत: इन संस्थाओं से यह अपेक्षा की गई है कि ये समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विकास में आने वाली समस्याओं के निराकरण हेतु ज्ञान का उपयोग एवं शोध कार्य करें । विश्वविद्यालयों के कार्य सम्बन्धी नये आयाम को "प्रसार" कहा गया एवं इसे

शिक्षण और शोध के समान ही दर्जा दिया गया है । प्रसार कार्य केवल उपेक्षित वर्गों के लिये लोक कल्याणकारी क्रियाकलाप मात्र ही नहीं हैं, बल्कि समाज के विभिन्न अभिकरणों के अन्त:क्रियाओं की एक प्रक्रिया है और उच्च शिक्षा को जनजीवन की आवश्यकताओं एवं आकाक्षाओं से जोड़ने का एक साधन है ताकि राष्ट्र के नागरिक विभिन्न समस्याओं के समाधान खोजने में सफल हो सकें ।

हमारे देश की उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में कोठारी आयोग (1964-66) ने विश्वविद्यालय के कार्यों में "प्रसार" को भी सम्मिलित किये जाने की आवश्यकता महसूस करते हुये कहा कि विश्वविद्यालय द्वारा केवल निष्णातविद्वितजनों द्वारा ज्ञान की शोध व खोज करना तथा अपने प्रतिरूप तैयार करना भूतकाल की बात हो गई है । समाज और विश्वविद्यालयों के बीच जो ऊँची दीवार खड़ी हो गई, उसको समाप्त करके दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना, समय की मांग है ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (1977) की नीति कथन (पोलिसी स्टेटमेन्ट) में "प्रसार" को विश्वविद्यालयों का कार्य स्वीकार करते हुए कहा गया है कि विश्वविद्यालयों को शिक्षण और शोध के साथ-साथ "प्रसार" को भी अपना कार्य स्वीकार करना चाहिये और उसे शिक्षण और शोध के समान ही मान्यता दी जानी चाहिये । सभी विश्वविद्यालयों से यह अपेक्षा की गई कि वे अपने-अपने क्षेत्रों से परस्पर सेवा और सहयोग के गहन सम्बन्ध विकसित करें और सभी छात्रों तथा अध्यापकों को प्रसार कार्यक्रमों में शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में सक्रिय रूप से सम्मिलित होना चाहिये ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रसार कार्य को उच्च शिक्षा संस्थाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देय मान लिये जाने के उपरान्त भी विश्वविद्यालयों द्वारा अभी तक इस दिशा में विशेष प्रयास प्रारम्भ नहीं किये गये हैं । अभी भी शिक्षण संस्थायें अपने पुराने पाठ्यक्रम एवं क्रियाकलापों से जुड़ी हुई हैं । जिनका क्षेत्र की सामयिक सामाजिक समस्याओं का सामना करने, स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते हुये उनका समाधान करने तथा आवश्यकताओं की पूर्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है । उच्च शिक्षण संस्थाओं का लाभ शहरी क्षेत्रों के कुछ बुद्धिजीवियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों

और देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकांश लोगों तक इसका लाभ पहुँचना चाहिये। हमारे समाज में व्याप्त असमानताओं को कम करने की दृष्टि से विश्वविद्यालयों को अपनी संरचना, विषयवस्तु एवं शिक्षण प्रणाली का पुनर्गठन करना होगा। विश्वविद्यालयों को प्रत्येक समुदाय को लाभान्वित करने हेतु लचीले, विविधतापूर्ण, नई तकनीकी एवं विस्तृत कार्य क्षेत्र वाले नये प्रतिमान एवं परिवर्तित विकल्पों का निर्माण करना होगा।

विश्वविद्यालयों द्वारा अपनी इस भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह तभी सम्पन्न किया जा सकता है, जबकि ये संस्थायें प्रसार कार्य को समुचित महत्व प्रदान करें। इससे न सिर्फ छात्रों को ऐसे व्यवसाय अपनाने के अवसर प्राप्त होंगे, अपितु इन प्रयासों से स्थानीय क्षेत्र के अधिकांश नागरिकों तक विश्वविद्यालय का लाभ पहुँच सकेगा और हमारा समाज और देश समुचित उन्नति कर सकने में समर्थ होगा।

RECOMMENDATIONS FOR THE IMPROVEMENT IN THE SELECTION, TRAINING AND ADVANCEMENT OF KNOWLEDGE OF TEACHERS OF HIGHER EDUCATIONAL INSTITUTIONS.

****

BEENA SHAH

Teacher's performance is the most crucial input in the field of education. Whatever, policies may be laid down, in the ultimate analysis, these have to be interpreted and implemented by teachers, as much through their personal example as through teaching-learning processes. The variables which determine the effectiveness of teaching-learning processes are - the environment and institutional factors, Psychological characteristics of the teacher and his academic attainments, interaction potential between teachers and students, educational policies, decision making structures, contents of curricula and evaluation techniques, the commitment of academic community to a professional ethics and social change etc.

We are on the threshold of the development of new technologies likely to revolutionise teaching in classrooms. But, unfortunately, the process of updating the curricula of teacher-education has been very slow. Much of teacher-education is irrelevant even to contemporary requirements, leave alone these of the future. The selection procedures and recruitment systems for teachers have also not kept pace with the needs in terms of either number or of quality.

Selection of Teachers - The criteria and nature of the important problem, crucially impinging upon the teacher's role and performance. It is widely believed that much depends upon selection - selection of right type of people to the teaching profession, to enable education, determine the desting of the nation and its development. For it, the professional qualification alone should not be the criterian of selection. Many people, who have neither the inherent competance nor the aptitude for teaching come into this profession. This happens largely, because no screening worth the name is attempted while

admitting students to teadher - training schools and colleges. Therefore, in order to check the entry of right type of personnel in the teaching profession along with academic attainments, his aptitude, interaction potential, scientific temper and linguistic skills should also be considered under the criteria of selection.

Besides these, the problem of political interference in the selection, posting and transfer of teachers is also seen an equally serious in affecting the teachers function and eventually the function of educational institutions. This evil has effected not only the functions of the higher learning institutions but developed the politics among the teachers and students. Due to which the teachers have started to keep their direct involvement in political activities, pressure groups of various kind on casteist, regional and communal lines which tend to relegate teaching to the secondary place. It is however, recognised that political education is essential for preparing future citizens for participating in the process of democracy. This would mean that political issues might be debated within the precincts of the university at the intellectual level but the administrative system of the university should not be used or subverted for the ends of any political party. There is an urgent need of establishing a consensus on this issue. Whether any legislative measures are called for also needs for considerations.

Need of Professional Training - It is widely accepted that the calibre of teachers both at school and university levels, has deteriorated ever the last three decades. The best brains are today attracted by medical and engineering professions. The second rung enters other public sector undertakings, national banks, L.I.C. etc. And thus, in majority, it is really those who fail to get entry into any of the above remunerative jobs, enter this teaching profession half-heartedly.

But, what can be done to improve the quality of those who do enter and continue in the teaching profession is the question with which many are concerned. Selection mechanism is seen as the part of the solution. The other part is seen to hinge upon the standards of teacher-training programme. It should be attuned to the demand of the society.

For it, it is necessary to overhaul and change the system of teacher training. Thorndike maintains that the efficiency of any profession depends in a large measure upon the degree to which it becomes scientific. Some kinds of awareness does exist in the academic community to strengthen the links between higher education and teaching techniques.

While the elementary and higher secondary schools insists on training in the education techniques and teaching practices, college or university teaching does not seem to need or call for any orientation in this direction. Implicit in it is the assumption that if a man has somehow acquired a post graduate degree, he is qualified enough to teach under-graduate classes. This assumption may be valid in past when knowledge of facts was supposed to be the main issue of teaching but in the present context lecturing or teaching of a particular subject is not so important what is more significant is how it is taught and with what objectives and what assumptions. Therefore, for improvement of the quality of teaching there is an increasing concern for the professional preparation of university teachers.

Professional Preparation for Improvement - The American Council on Education, the Hale Committee in Britain and the education commission in India, all have advanced for a change in the character of teaching in the colleges and Universiversity to stimulate thinking. Problem solving ability and originality. Moreover, the college teachers today are confronted with pedagogical and Psychological problems i.e., large classes, student indiscipline and dissatisfaction. They are also finding it difficult to keep up with the ever growing frontiers of knowledge and new techniques of teaching. It is being rightly felt, therefore, that the college teachers should undergo professional training and education before and after they enter the teaching profession.

There is an unprecedented expansion of higher education in India. Today there are about 1,50,000 teachers working in nearly 140 universities and 5,000 colleges with an enrolment of 3-4 million students. Considering the large number of teachers who are being recruited every year in the colleges and universities, a variety of strategies will have to be adopted for their professional preparation.

The following strategies are suggested for the same-

(1) Pre-service course, (i) An intensive full time course of one year's duration preferably leading to a degree seems desirable for preservice training of college teachers.

(ii) An optional specialization in methodology of college teaching may be introduced for the candidates studying for M.Phil. degree course so that those intending to go for teaching in a university or college may particularly for the pedagogical specialization along with the care subject courses for their degree. University of Rajasthan has taken a lead in this respect.

2. In Service Course:

(i) A part time course in the extra college hours leading to diploma is desirable for inservice training of college teachers.

(ii) Short erientation courses for college teachers during holidays are also desirable for orienting them with new development in pedagogy and various problems in the of field of higher education.

Advancement in Knowledge - It is necessary to make the academic profession more schientic by planning and comprehensive innovations. Both the human medium and technical media cambined together will strengthen the conditions of learning and the abilities of learners. In brief I would like to give the following suggestions to the policy makers on this count.

(1) To make the teaching-learning activity more exciting. The use of new technology of education - mass media, radio, taped programme, T.C. and computer instruction etc. should be encouraged. These possibilities when put to adequate use will bring a new meaning in the educational system.

years (2) It is appropriate to say, something about the development of new curricula and contents of courses in the context of environmental changes. New inter-disciplinary and multi-disciplinary curriluàa should be developed. The emphasis should be on an integrated studies. The new curricula will encourage the faculty to use new courses and new approaches to teaching and to respond to students more individually, and to try cooperative teaching efforts.

(3) Greater academic freedom should be accorded to the teacher in schools and colleges to plan courses of studies and research facilities. Well equipped libraries and laboratories should receive more generous grants.

(4) The pay commission, new appointed will no doubt revise the salary scales and conditions of service of all teachers in the light of national wage policy so that the young teachers in the colleges should not regret their choice of academic life against more lucrative and attractive jobs in Banks, LIC, Business, trade etc.

(5) The Vice-Chancellor should be freed in shaping academic policies and research work without political pressures and all round criticism of teachers will be naturally naturally evoided when the learned men and women will honoured as intellectual, scientific technological strength of the nation.

(6) Beyond the facts of knowledge, beyond books or papers or examination there is same thing which is most important, it is the relationship between the students and teachers which creates the necessary climate for teaching-learning phenomenan. Teachers have very little interaction with the students especially at the under-graduate level and aoutside the classrooms. This leads to depersonalization of higher education and partly to the alienation of students due to indifferent and impersonal teaching. The healthy interaction with students helps the teacher in understanding their academic growth, weakness, interests, problems and perspectives. In the teaching learning process, this interaction potential can be maximized by tutorial classes, seminars , discussions, Library and laborarory facilities and diversification of courses

NEW EDUCATION POLICY: SOME SUGGESTIONS.

Dr. R.S.Yadav,
Faculty of Education,
University of Garhwal,
Srinagar (Garhwal),U.P.

Various commissions and committees were appointed by the Government of India to probe into the failure and success of persisting system of examination, Calcutta University Commission (1917), Radha Krishnan Commission (1949), Secondary Education Commission (1952-53), Kothari Commission (1964-66) and recently International Commission on the Development of Education (1972) strongly pleaded to do away with the existing flaws and inadequacies present in the old system of education evolved 250 years ago by Lord Macaulay. The basic question which has been often neglected is that basic needs, Aspirations and requirements of a particularl community, region, society, state, and nation as a whole were not taken into consideration.

Based on the above criterion, it would be useful to reviev the recent report of UNESCO (1972) which stated:

"Link education to life, associate with it with concrete goals, establish a class relationship between society and invent or discover an education system that fits its surroundings, surely, this is where solution must be saught" (p.69).

Future Plan : Longsightedness.

A critical review of all the reports reveals that new education policy should reflect the following factors as the basis of educational management which should facilitate the provisions of not only, related with the present system of examination but comes up with future plan of 50 years or more (Yadav, 1985). In order to meet the needs, requirements and aspirations of the society, the management of the education should be based on the following theme:

(i) Regional needs, requirements and aspiration of the society, i.e. at state level regional level.

(ii) National needs and requirements i.e. at the national level and,

(iii) Needs and requirements based on international standard of highest excellence.

Composite Culture:

The above stated framework should be kept in view while managing education and framing the curriculum. The essentials of our composite culture should never be forgotten while managing education and evolving a new plan for education policy. It should be within the context here to mention that philosophical, psychological, sociological, cultural, political and economic aspects should be taken care of, well alongwith the techno and agro-facts.

Management and Structure of Education:

Keeping in the totality of the perfectness, the following areas of priorities should be taken into consideration for the well managed and reorganized policy of education:

(a) Academic Management:

(i) Education its management, curriculum, administration at the primary level,

(ii) Education and its management at the secondary level,

(iii) Educatio-n and its management at the Higher level i.e., at the collegiate and university level.

(b) Technical and medical type of education and its management,

(c) Management of industrial procution, sophisticated research centres: such as, BHEL, BARC, and TIFR etc.

(d) 100% literacy upto 2000 AD as visualized in the UNESCO plan.

Management of Education:

However, the problems remains unresolved. The main factors with which common people, Government and administrators are confronted time and again are (i) the classification of educational levels i.e., educational ladders and (ii) to make it job oriented same persons may get education upto high school and intermediate level after which they can get training in I.T.I.'s or any other institutions to seek the job of their own capability. Still higher learners may avail

an opportunity to get education upto graduate level and further undergo training in business management, engineering, medicine based on t-her faculty system. Rest top of intellectuals should get education upto P.G. (Post-graduate level) and provision of admission at P.G. level should be very similar as in engineering and medicine through a competitive examination followed by interview. The last and final class belonging to the standard of the highest excellence should go for research which could make original contribution to the new fund of knowledge. Their findings of research should give rise to the novel production in the field of academics, technology, industry and the like other managements or enterprizes. This type of management of education will not only meaningful but also practical meeting both the problems; enormous enrolment in the higher institutions and universities and the problem of unemployment.

Administration of Education:

At the administrative level, where appointments are made on the basis of qualifications, the most efficient and skilled personnels should go to teach the tinny taughts at the primary level. The basis flows that have been bitterly criticised, time and again, are the strata of the teachers and other officials based on salary system. The criterian of equal salaries with equal qualifications should be strictly followed whether a teacher at primary, secondary or university level. Only then, it would be possible to raise the standard of education. The similar ideas were expressed in a number of meetings, conferences and symposiam held at various levels of international and national academicla. In technologically advanced countries like America, Britain, France, Japan, Sweedan, Russia and even in some developing countries like philippines, Malayasia, the same criterian of equal jobs with equal qualifications have been adopted and it is interesting that the system is functioning well.

Appointments:

It is also essential to state herein that Ph.D. should be the precondition for appointment at least at higher level i.e., at the level of an Assistant Professorship.

At higher level of appointment i.e., as fulfledged Professor, published work of the highest excellence with a fixed standard should be the part and parcel. The appointment should be made of the candidates, showing independent capacity of publication and unique production of the highest excellence which could benefit both the society and the nation as a whole.

Modification - Examination System:

The examination system should based on criterian consisting of : (i) essay type, (ii) short answer type and (iii) objective type questions, as that chance errors operating may be partialled out (Yadav, 1981,85). Moreover, the criterian to meet the standard of higher excellence, may also be employed from the frame work, prepared as, "Examination Reform: A plan of action", evolved by the university Grants Commission (1974). Hence, the provisions incorporated as : (i) question banks, (ii) internal assessment, and (iii) grading should be strictly adopted and followed to, just to improve the quality of examination. The examining bodies, in collaboration with the university experts, may also make use of the newly developed criterian based on research and its application.

Some Other Significant Aspects:

Some other significant items as visualized in new pattern of education may also be taken in account for the harmonius development of education into all walks of human surroundings. For instance, some guidelines on woman education, informal education, non-formal education (adult education) higher education, teacher training, primary, secondary and technical education, budgeting fund allocations may also be given so as to stream line the system.

Equal Opportunities and Human Values:

However, the problem will remain unresolved until some specific provisions are made for the incalculation of human value: moral raising, character-building, honesty,

faith, dutifulness, punctuality etc. Thus, the framework of education should reflect an all round re-structuring, reorganization and well planning of the education and its implementation. It is also noteworthy here that rural as well as urban development both should be given weightage. Equal opportunities to all should be given. The conclusion is that our new education system should reflect a future plan of at least 50-60 years. Then future technological system, space research, satellite communication trump over different planets with sophisticated computer operation, system analysis etc. should be the salient features of the tomorrow's education policy. Hence, all types of developmental activities should go in collaboration with each other. Only then, it would be possible to meet the aims and objectives of education so far derived for a better tomorrow with its past and present as the foundations of education.

Conclusion:

To sum up, it can be said that in place of heavy course, a balanced curriculum (syllabus extra curricular activities) should be prescribed for a particular class, age and mental maturity of the learner. Alongwith the avademics, job orientation and attainment of practical skills with a deep sense of national, emotional, and ethical integration, its promotion and implementation are the salient features of the new education policy. New education policy does not means the allocation of heavy financial fund but appropriate management on priorities, basic for the harmonius development of a balanced personality and thereby of a society and nation as a whole.

*****

दिनांक 10/2/86 स 12/2/86 तक गढ़वाल विश्वविद्यालय के बिड़ला परिसर में उच्च शिक्षा की नई नीति विषय पर आयोजित संगोष्ठी में भाग लेने वाले व्यक्तियों की सूची :

1. श्री एच0एच0ए0 बौड़ाई, कुलपति, गढ़वाल विश्वविद्यालय ।
2. डॉ0 ठाकुर गुरु प्रसाद, अधिष्ठाता-कला संकाय ।
3. डॉ0 एन0एस0 विष्ट, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष-अर्थशास्त्र ।
4. श्री के0एन0 जोशी, प्रवक्ता- अर्थशास्त्र विभाग ।
5. डॉ0 आर0एन0 गैरोला, प्रवक्ता-राजनीति विज्ञान ।
6. डॉ0 जे0पी0 पचौरी, प्रवक्ता- समाजशास्त्र ।
7. डॉ0 एस0एस0 रावत, प्रवक्ता-उद्यानिकी ।
8. डॉ0 पी0एस0 रावत, विभागाध्यक्ष-समाजशास्त्र ।
9. डॉ0 के0बी0 बुधाड़ी, प्रवक्ता-शिक्षा विभाग ।
10. डॉ0 बीना शाह, प्रवक्ता-शिक्षा विभाग ।
11. डॉ0 अन्जनी बहुगुणा, प्रवक्ता-अर्थशास्त्र विभाग ।
12. डॉ0 विभा गौड़, प्रवक्ता-दर्शनशास्त्र ।
13. डॉ0 लता गैरोला, प्रवक्ता-मनोविज्ञान विभाग ।
14. डॉ0 एम0एस0 रावत, विभागाध्यक्ष-रसायन विज्ञान ।
15. डॉ0 एच0आर0 सिंह, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष-जन्तु विज्ञान ।
16. डॉ0 के0पी0 नौटियाल, अधिष्ठाता-छात्रकल्याण ।
17. डॉ0 जी0एस0 असवाल, अधिष्ठाता-शिक्षा विभाग ।
18. डॉ0 आर0एस0 यादव, प्रवक्ता-शिक्षा विभाग ।
19. डॉ0 हरिमोहन, प्रवक्ता-हिन्दी विभाग ।
20. डॉ0 सी0 प्रसाद, विभागाध्यक्ष-भू-गर्भ विज्ञान ।
21. डॉ0 अरुणा मिश्र, सहायक निदेशक, प्रौढ़ शिक्षा
22. डॉ0 ए0एन0 पुरोहित, प्रोफेसर, एच0ए0पी0पी0आर0सी0 ।

23. डॉ० व्यास देव इन्दु, प्रवक्ता-भौतिकी विज्ञान ।
24. डॉ० पी०एस० थापलियाल, विभागाध्यक्ष-गणित ।
25. डॉ० एस०पी० रस्तोगी, प्रवक्ता-समाजशास्त्र ।
26. डॉ० डी०सी० जोशी, प्रवक्ता-भौतिक विज्ञान ।
27. डॉ० माया शंकर लाल, प्रवक्ता-जन्तु विज्ञान ।
28. डॉ० बी०एस० नेगवाल, विभागाध्यक्ष-भौतिक विज्ञान ।
29. डॉ० कमलेश कुमार, विभागाध्यक्ष-भूगोल विभाग ।
30. डॉ० के०एस० नेगी, संकायाध्यक्ष-वाणिज्य संकाय ।
31. डॉ० एस०एस० बालियान, प्रवक्ता-रसायन विज्ञान ।
32. डॉ० अतुल सकलानी, प्रवक्ता-इतिहास विभाग ।
33. डॉ० एस०पी० नैथानी, प्रवक्ता-इतिहास विभाग ।
34. डॉ० विनोद नौटियाल, प्रवक्ता-इतिहास विभाग ।
35. डॉ० जी०एस० रावत, प्रवक्ता-भू-गर्भ विज्ञान ।
36. डॉ० उमा भैठानी, प्रवक्ता-हिन्दी विभाग ।
37. डॉ० गीता पंत, प्रवक्ता-रसायन विज्ञान ।
38. विश्वविद्यालय के समस्त छात्र/छात्राएं ।

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B,Sri Aurbindo Marg,NewDelhi-110016
DOC. No. 3340
Date 18.9.86

NIEPA DC
D03340